आर्य धन

अमर हुतात्मा

स्वामी श्रद्धानन्द

(२)

जिये तो जान लड़ाते रहे वतन के लिए,
मरे तो हो गए कुरबान संगठन के लिए।

वर्ष-२ २६ दिसम्बर १९७६ अंक-८

इस अंक का मूल्य २) ...ल्क १२)

आर्यधन साप्ताहिक

(आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुखपत्र)

अमर हुतात्मा

स्वामी श्रद्धानन्द

विशेषांक

प्रधान स...

मुरारी ला...

आर्य प्रतिनिधि स...

प्रबन्ध सम्पादक

शिव कुमार

वर्ष-२ २६ दिसम्बर १९७६ अंक-...

इस अंक का मूल्य २) ...ल्क १२)

कहां क्या

मुद्रक, प्रकाशक : शिवकुमार द्वारा, सैनी प्रिण्टर्स दिल्ली-६ में छपवाकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए १५९३ हरध्यान सिंह रोड़, करोल बाग नई दिल्ली-११०००५ से प्रकाशित—फोन ; ५६३८८८

सम्पादकीय

हम स्वामी जी से क्या सीखें ?

एक सूक्ति है कि "सामान्य लोग परिस्थितियों के सामने झुक जाते हैं, जब कि असामान्य लोग उन पर हावी हो जाते हैं।" स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन के सन्दर्भ में जब हम इस उक्ति पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि जैसी परिस्थितियां और चुनौतियां स्वामी जी के समक्ष उपस्थित थीं, वैसी ही कुछ भिन्न रूप में हमारे समक्ष भी उपस्थित हैं। स्वामी जी ने उन चुनौतियों का सामना किया और हम में से अधिकतर भीरु और पलायनवादी होने के कारण उनकी ओर से आंखें मूंद कर यह मान लेते हैं कि सब ठीक है; हमारे करने को कुछ शेष नहीं। स्वर्गीय दिनकर जी कहा करते थे कि मानव मस्तिष्क का पूर्ण उपयोग तभी सम्भव है, जब उसके सामने विषम समस्याएं मुंह बायें खड़ी हों, अन्यथा (जैसे दिनकर जी स्वीडन सदृश अति समृद्ध देशों का उदाहरण देकर बताया करते थे) मानव जीवन घर से दफ्तर, दफ्तर से घर आने-जाने और रेडियो-टेलीविजन सुनने देखने में ही बीत जाता है और चिन्तन नये आयाम नहीं ले पाता। हम में से अधिकतर लोग न केवल भीरु और पलायन वादी हैं, अपितु शून्यवादी भी हैं। 'शून्याय स्वाहा' हमारा महामन्त्र हो गया है। जो प्रश्न हमारे मन में उठते हैं, उनका उत्तर तलाशने की बजाय हम उस स्थिति में पहुंच जाना चाहते हैं, जहां प्रश्न उठने ही बन्द हो जायें। सच तो यह है कि हम स्वयं ही एक प्रश्न बन गये हैं।

किन परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना स्वामी जी को करना पड़ा, इस की चर्चा हम इस लेख में नहीं करेंगे। यह पूरा का पूरा अंक ही इस प्रश्न का उत्तर दे रहा है कि स्वामी जी किस प्रकार परिस्थितियों और चुनौतियों से जूझे और उन्होंने सफलता पाई। जिस क्षेत्र में भी वह गये, जनता ने उन्हें अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा किया।

आज हम स्वामी जी को श्रद्धांजलि भेंट कर रहे हैं। ६२ वर्ष पूर्व राम्जे मैक्डानल्ड ने उनके बारे में लिखा था कि "आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की मूर्त्ति घड़ने के लिए आदर्श के रूप में महात्मा मुंशीराम का स्वागत करता है और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार उन में सन्त पीटर का रूप देखता है। हमारे विचार में स्वामी जी को इससे बड़ी श्रद्धांजलि नहीं दी जा सकती।

स्वामी जी में अनेक गुण थे। अपने-अपने स्वभाव के अनुसार हम उनके एक या अनेक गुणों को अपने जीवन में उतार सकते हैं। भगवान् की प्रार्थना से मनुष्य को शक्ति मिलती है, प्रभु हमें शक्ति दें, बल दें कि हम कर्म-क्षेत्र में सीना तान कर खड़ा होना सीखें; भीरु, पलायनवादी और शून्यवादी बन कर पीठ न दिखायें। स्वामी जी के आशीर्वाद से प्रारम्भ किये गये "वीर अर्जुन का ध्येय वाक्य था "न दैन्यं न पलायनम्" (जीवन में न तो दीनता दिखाना और न भाग खड़े होना)। प्रभु कृपा करें कि यही हमारा ध्येय वाक्य हो।

●
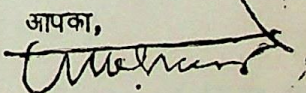
भारत के उपराष्ट्रपति के सचिव
नई दिल्ली - 110011
SECRETARY
TO THE VICE-PRESIDENT OF INDIA
NEW DELHI

दिसम्बर 9, 1976

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक 1 दिसम्बर, 1976 का प्राप्त हुआ, धन्यवाद ।

उपराष्ट्रपति जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान अर्ध-शताब्दी 23 दिसम्बर, 1976 के अवसर पर आर्य-धन का " अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द " विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं । उपराष्ट्रपति जी आपके इस विशेषांक की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएं भेजते हैं ।

आपका,

(वि० पठके)

राज्य मंत्री
स्वास्थ्य और परिवार नियोजन,
भारत
नई दिल्ली-११००११
MINISTER OF STATE
FOR HEALTH AND FAMILY PLANNING
INDIA.
NEW DELHI-110011

स न्दे श

मुझे प्रसन्नता है कि आर्य-धन हिन्दी साप्ताहिक ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के अर्ध शताब्दी समारोह के अवसर पर अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द विशेषांक प्रकाशित करने का निश्चय किया है। किसी भी महापुरुष की चिरस्मृति के लिए इस प्रकार के आयोजन नि:सन्देह अत्यन्त प्रशंसनीय होते हैं। हमारे देश में अनेक महान ऋषि-मुनि और महात्मा हुए हैं जिन्होंने मानव-समाज को एक नई स्फूर्ति प्रदान की है और अपनी साधना-शक्ति से समाज को प्रेरणा दी है। आशा है प्रस्तावित विशेषांक में स्वामी जी के देश-प्रेम तथा त्याग सम्बन्धी साहित्य का समावेश होगा जिससे पाठकगण लाभान्वित हो सकें। विशेषांक के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

चौ. रामसेवक
(चौ. राम सेवक)

पर्यटन तथा नागर विमानन मन्त्री

नई दिल्ली; दिनांक: १० दिसम्बर; १९७६

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि हिन्दी साप्ताहिक "आर्य धन" प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान अर्ध-शताब्दी २३ दिसम्बर १९७६ के अवसर पर "अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द' नाम से अपना एक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द आर्य समाज के उन महान् नेताओं में से थे जिन्होंने हर दिशा में देश के पुनरुद्धार एवं पुर्निर्माण में एक अपूर्व योगदान दिया है। गुरुकुल की स्थापना करके राष्ट्रभाषा हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना कर उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में एक महान् क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया। कन्या गुरुकुल की स्थापना करके नारी शिक्षा को अग्रसर किया। अछूतोद्धार आंदोलन चला कर दलित वर्ग को समाज में चलाए जा रहे आँदोलन को और उसके बाद देश के स्वतंत्रता आंदोलन को भी स्वामी श्रद्धानन्द ने बड़ा निर्भीक एवं प्रबल सहयोग प्रदान किया। इस आजीवन कर्म योगी का समाज सेवा रूपी यज्ञ में अन्तिम आहुति उनके त्यागमय जीवन का सब से उज्ज्वल परिच्छेद था जिस के बारे में महात्मा गाँधी ने भी ये अमर उद्‌गार व्यक्त किए थे 'काश मैं भी इसी प्रकार की मृत्यु का गौरव प्राप्त कर सकता।" कौन जानता था कि महात्मा के ये उद्‌गार उन के बारे में ठीक उसी रूप में चरितार्थ होंगे। इस अमर शहीद राष्ट्र भक्त संन्यासी के प्रति मैं अपनी भावभीनी नतमस्तक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

(राज बहादुर)

श्रम उप-मन्त्री भारत सरकार

नई दिल्ली १६ दिसम्बर, १९७६

प्रिय श्री शिवकुमार जी ।

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आर्य समाज के महान् संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द की बलिदान अर्ध शताब्दी के अवसर पर "आर्य-धन साप्ताहिक का एक विशेषांक निकाला जा रहा है ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी भारत की महान विभूतियों में से थे । छुआछूत और ऊंच-नीच तथा अशिक्षा को समाप्त करने व देश की स्वाधीनता के लिए उन्होंने ऐसे साहसिक कार्य किये जिनकी गूंज सदियों तक सुनाई देती रहेगी ।
मुझे पूर्ण आशा है कि उक्त विशेषांक में प्रकाशित विषय सामग्री कुरीतियों को समाप्त करने एवं राष्ट्र के नव निर्माण के लिग प्रेरणा दायक होगी ।

मैं स्वामी जी को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं ।

आपका,

बालगोविन्द वर्मा

कृषि मंत्री
फोन : कार्यालय २२८७५
आवास-२७९०६
विधान भवन,
लखनऊ-२२६००१
दिनांक ११-१२-७६

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान का अर्ध शताब्दी के अवसर पर अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द विशेषांक प्रकाशित करने का आयोजन किया गया है।

अपने समय के महान समाज सुधारक स्वामी श्रद्धानन्द ने धार्मिक पाखण्ड छुआछूत, ऊँच-नीच के भेद-भाव की कुरीतियों के विरुद्ध जीवन पर्यन्त संघर्ष किया और सत्य तथा सिद्धान्त के लिए उनका बलिदान आने वाली पीढ़ियां युगों तक प्रेरणा प्राप्त करेंगी।

उस महामानव के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए इस अवसर पर प्रकाशित होने वाले विशेषांक की सफलता की मैं कामना करता हूं।

वीरेन्द्र वर्मा

संसद् सदस्य

(लोक सभा)

६ डा० राजेन्द्रप्रसाद रोड

नई दिल्ली

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्र के महान अमर शहीद संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान की अर्ध-शताब्दी २३ दिसम्बर १९७६ के अवसर पर 'आर्य-धन' 'अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द' विशेषांक प्रकाशित कर रहा है इसके लिए आर्य-धन को मैं बधाई देता हूं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के पश्चात् सारे राष्ट्र को जितना आर्य संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्रभावित किया उसका दूसरा उदाहरण हमारे पास नहीं है। यूँ तो स्वामी दयानन्द जी के संदेश को घर-घर पहुंचाने का कार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने किया ही लेकिन जलियां वाले बाग के हत्याकाण्ड के पश्चात् कांग्रेस में पुन: जीवन डालने का श्रेय वीर स्वामी श्रद्धानन्द जी को ही जाता है जिसने निर्भय होकर चाँदनी चौक के टाउन हाल के सामने अपनी छाती श्वेत प्रभु अंग्रेज शासक के सामने गोलियाँ खाने के लिए खोल दी थी। दूसरी महान घटना जामा मस्जिद की सार्वजनिक सभा जिसे श्रद्धानन्द जी ने 'ह' से हिन्दू और 'म' से मुसलमान 'हम' एक हैं का उद्घोष किया था। जिससे ब्रिटिश शासन कांप गया था, उसी का परिणाम एक पागल मतान्ध अब्दुलरशीद के हाथों स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हुआ था।

तीसरी महान् छाप स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्राचीन गरिमामय भारतीय संस्कृति को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली हिन्दी माध्यम से ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा सर्व प्रथम गुरुकुल कांगड़ी से शुरु कराई।

मेरा समस्त आर्य जगत् से नम्र निवेदन है कि स्वामी जी के इन संस्थानों को जो उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र, एवं कन्या गुरुकुल देहरादून आदि को बिना दलगत राजनीति के चलाया जाये और उनके महान् उद्देश्यों को अमली जामा पहना कर सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें यही मेरी प्रार्थना तथा शुभ कामना है।

रामचन्द्र "विकल"

संसद् सदस्य
(लोक सभा)

प्रिय शिवकुमार जी,

आपका १ दिसम्बर १९७६ का पत्र कल ही प्राप्त हुआ। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आर्यसमाज के स्तम्भ तथा राष्ट्रीय एकता के अनन्य समर्थक स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान दिवस के अवसर पर आप 'आर्य-धन' हिन्दी साप्ताहिक विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। मैं समझता हूं आर्यसमाज के राष्ट्रीयता से ओतप्रोत सिद्धान्तों की हमारे देश को जितनी आज आवश्यकता है उतनी कभी नहीं रही। अनुशासन पर्व के इस काल में स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं और आशा करता हूं कि देशवासी उनके दिखलाये मार्ग पर चल कर राष्ट्रीय एकता को और सुदृढ़ करेंगे।

मैं आपके आयोजन की सफलता की कामना करता हूं।

भवदीय
दलीप सिंह

संसद् सदस्य
(राज्य सभा)
१२ पन्त मार्ग
नई दिल्ली-११०००१
दिनांक ६-१२-७६

प्रिय शिवकुमार जी,

आपका कृपा पत्र मिला। यह जानकर हर्ष हुआ कि 'आर्यधन' बलिदान अर्धशताब्दी के अवसर पर श्रद्धानन्द विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। स्वामी जी के लिए मेरे अन्तस्तल में अपार श्रद्धा के भाव हैं। आप जानते हैं कि मैं हरयाणा के भोले-भाले धर्म-बन्धुओं के हित साधन के लिए कितना चिन्तित रहता हूं। स्वामी जी ने अपने जीवन का पर्याप्त समय हरयाणा में गुजारा। उनके द्वारा संस्थापित गुरुकुलों में से अधिकतर हरयाणा में ही हैं। हरयाणा में आर्यसमाज के सिद्धान्तों का जो प्रचार है, उसका अधिकांश श्रेय स्वामी जी को ही है। लेकिन मेरा मतलब यह नहीं कि हरयाणा का स्वामी जी पर एकाधिकार है। वह तो सारे देश के, अपितु सच तो यह है कि संन्यासी होने के नाते सारे संसार के थे। मैं आपका आभारी हूं कि आपने ऐसे महापुरुषों के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का अवसर मुझे दिया।

मैं इस विशेषांक के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रकट करता हूं।

आपका
रणवीरसिंह
उपनेता, कांग्रेस, संसदीय दल
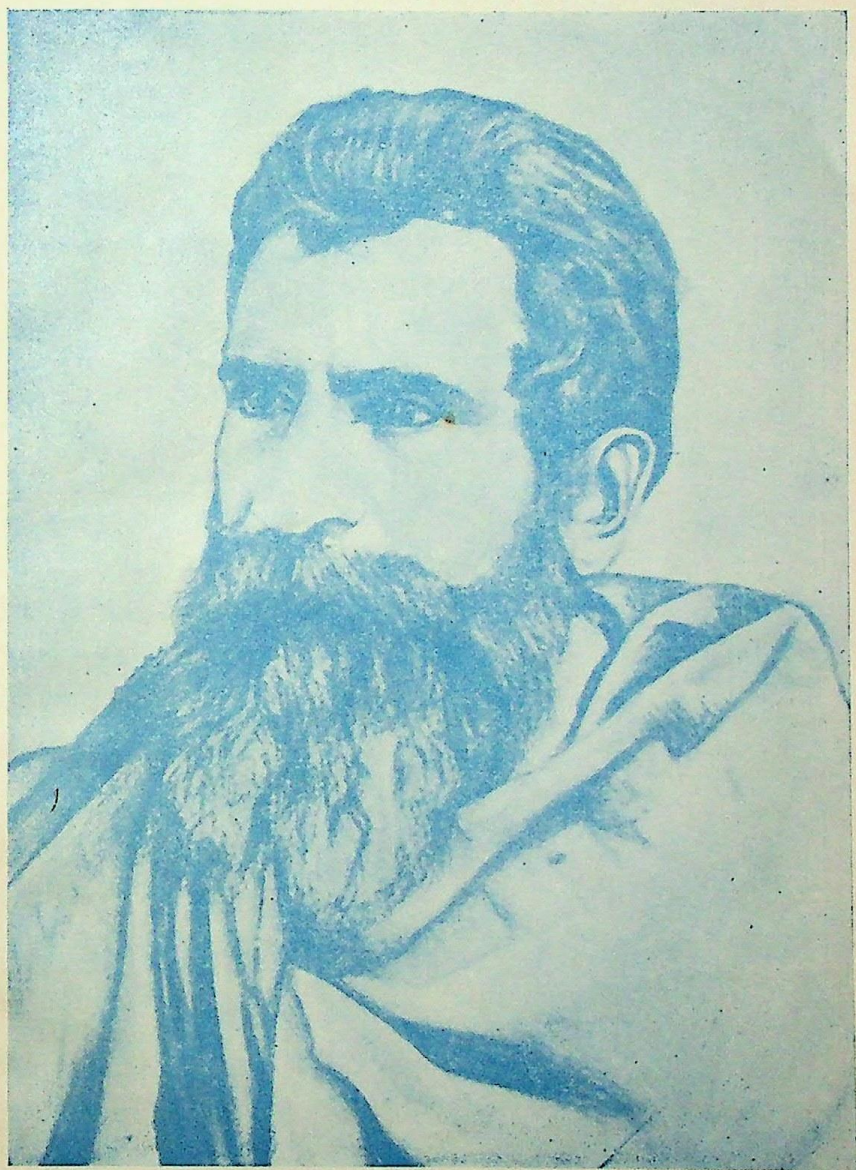
महात्मा जी : संन्यास ग्रहण से पूर्व का चित्र

स्वामी जी : संन्यास ग्रहण के कुछ समय बाद का चित्र

एक शिक्षादायक जीवन

□

स्वामी श्रद्धानन्द जी का, संन्यास लेने से पूर्व का, नाम 'मुंशीराम' था। उनका प्रारंभिक चरित अद्भुत, परस्पर-विरुद्ध घटनाओं से भरा हुआ था। जिन के पिता गदर के जमाने में ब्रिटिश सरकार के सेवक और सहायक की हैसियत से बागियों से लड़े, और सहारनपुर जिले को निःशस्त्र बनाने का कारण हुए, वही भारत को स्वाधीनता दिलाने के लिए झगड़ने वाले सब से बड़े वकीलों में से एक हुए। कमाई के जगत् में जिन के जीवन का प्रवेश नायब-तहसीलदारी से हुआ, वह किसी समय अहिंसा-प्रिय, असहयोगी देश-सेवकों के मुखिया समझे गये। जिन के यौवन का बहुत-सा भाग भोग और विलास की सेवा में व्यतीत हुआ, उन के जीवन का एक मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचर्य और तपस्या का प्रचार करना बन गया। जो एक दिन युवक नास्तिकों के अगुआ थे, ईश्वर तथा धर्म को एक खिलौना समझते थे, उनका सब कुछ घर-बार तक धर्म पर न्यौछावर हो गया। ऐसे जीवन धर्म-शास्त्र और मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए बहुत मनोरंजक और शिक्षा-प्रद होते हैं। कारण,

वे उन से क्रमशः प्रकट होती हुई धर्मभावना का अनुशीलन कर सकते हैं। ऐसे जीवन सर्व-साधारण की आंखें खोलनेवाले कहे जा सकते हैं। एक ही जीवन में, अपराध और उसका पूरा प्रायश्चित्त भी, यह बात बहुत कम दिखाई देती है, और जहां कहीं दिखाई देती है, वह जीवन शिक्षादायक होता है। फिर यदि प्रायश्चित्त अपराध से कई गुना अधिक हो जाय, तो फिर उस का क्या कहना है ? वह जीवन तो जनता के लिए बहुत ही उपयोगी होगा।

वंश

स्वामी जी के परदादा सुखानन्द जी आनन्द की मूर्ति थे। आप के दादा गुलाबराय, महाराज नौनिहालसिंह की रानी श्रीमती हीरादेवी की डेवढ़ी के मुंशी थे। आप बड़े धार्मिक, व्यवहार में खरे और सच्चे थे। स्पष्टवादिता के लिये प्रसिद्ध थे। डेवढ़ी के मुंशी होने पर भी आप की प्रतिष्ठा बहुत थी, क्योंकि खरे आदमी से सभी डरते हैं। जब रानी हीरादेवी अपने पुत्र सरदार विक्रमजीत और कुंअर सुचेतसिंह सहित कपूरथले से निर्वासित होकर जालन्धर आई, तो गुलाबराय जी भी उन के साथ ही आये। स्वामी जी के पिता का नाम नानकचन्द था। आप छः भाइयों में सब से बड़े थे। आप ने छोटी अवस्था में थोड़ी-सी फारसी और उर्दू की शिक्षा के सिवा कुछ विशेष पढ़ा लिखा नहीं था। उन दिनों शिक्षा का आदर्श इतना ऊंचा नहीं था। सरकारी नौकरी में जाने के लिए भी बहुत ऊंची शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। ला० नानकचन्द जी की अवस्था अभी बहुत अधिक नहीं हुई थी कि आपको कपूरथले में 'काला' गाँव की थानेदारी दी गई। काम आपने परिश्रम से किया, परन्तु स्पष्ट-वादियों के लिए कहीं स्थान नहीं होता। उसी स्पष्ट-वादिता का प्रभाव था कि आप अपने कार्य में तो कामयाब समझे गये, परन्तु शीघ्र ही अफसर के नाराज हो जाने के कारण इस्तीफा दे कर अलग हो गये।

इतने में देश-भर में विद्रोह की आग भड़की। १८५७ का विद्रोह, सूखे ईन्धन में आग की तरह, धाँय-धाँय करके जल उठा। अन्य प्रान्तों में विद्रोह का जितना असर हुआ, उतना पंजाब में नहीं हुआ। केवल इतना ही नहीं, बल्कि पंजाब ने विप्लवकारियों के विरुद्ध, सरकार की सहायता भी की। पंजाब के जवान अंग्रेजी सरकार की नौकरी स्वीकार करके क्रांति-कारियों को दबाने के कार्य में प्रवृत्त हुए। ला० नानकचन्द जी भी पुनः एकान्तवास के जीवन का परित्याग कर भाग्य-परीक्षा के लिये युक्त-प्रान्त की ओर रवाना हुए। भाग्य ने साथ दिया, अवसर मिल गया। हिसार में सरकारी फौज की सहायता करने के बदले में कोतवाल बनाये गये। सहारनपुर को बे-हथियार किया, फिर नेपाल की तराई से मेलाघाट की लड़ाई में क्रान्तिकारियों के एक छोटे से दल को परास्त किया। इन सब सेवाओं से प्रसन्न हो कर सरकार ने बदले में आप को पुलिस के इन्सपैक्टर का पद दिया। इस समय से जबतक आप सेवा करते रहे, पुलिस के महकमे में ही रहे।

जन्म और बालपन

स्वामी जी का जन्म अपने गांव तलवन (जिला जालन्धर) में संवत् १९१३ की फाल्गुनबदी त्रयोदशी के दिन हुआ। ला० नानकचन्द जी उस समय नौकरी पर थे। उन्हें पुत्र होने का संवाद वहीं मिला। पुत्र का नाम मुंशीराम रक्खा गया। रास का नाम 'बृहस्पति' था। मुंशीराम चार भाइयों और दो बहिनों में सब से छोटे थे। ला० नानकचन्द जी की पत्नी बहुत ही सुशील, धर्म-परायणा और बच्चों से प्रेम करने वाली थीं। स्वामी जी ने अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग का वृत्तान्त 'मेरी जिन्दगी के नशेबो-फराज' नाम की पुस्तिका में लिखा है। उस में जहाँ कहीं अपनी माता का वर्णन किया है। वहाँ बहुत ही प्रेम और भक्ति से भरे हुए शब्दों में उन्हें स्मरण किया है। उसे पढ़ कर ज्ञात होता है कि माता के पुत्रा

से अगाध प्रेम था, जिसे वह बड़े धैर्य और विवेक से निभाती थीं। माता का जैसा आदर्श प्रेम होना चाहिये वैसा ही चारों भाइयों को प्राप्त था।

ला० नानकचन्द जी की नौकरी का समय युक्त-प्रांत में ही व्यतीत हुआ। वह बरेली, बदायूं, बनारस, बाँदा, मिर्जापुर, बलिया, आदि में पुलिस के महकमे के अधिकारी रहे। आप बहुत अधिक समय तक बनारस में शहर-कोतवाल रहे। पुलिस में आपने खूब प्रसिद्धि पाई। आप बड़े-बड़े डाकुओं को पकड़ने में बड़े प्रवीण थे। इसके लिये आप खास तौर पर मशहूर थे। ला० नानकचन्द जी बड़े ईश्वर-भक्त और तुलसी-कृत रामायण के बहुत प्रेमी थे। प्रतिदिन नियमित पूजा-पाठ होता था। दौरे में भी कभी पूजा-पाठ नहीं छूटता था। पुलिस का महकमा, उस में भी ऊंचा पद, फिर १९वीं सदी का अन्तिम भाग, रिश्वत के लिए इससे बढ़कर अनुकूल परिस्थिति और कौन सी हो सकती थी? तो भी ला० नानकचन्द अपने सहयोगियों में अधिक ईमानदार और कम रिश्वत लेने वाले समझे जाते थे।

चारों भाइयों में से इस चरित के नायक की ही शिक्षा की ओर विशेष प्रवृत्ति थी। मुंशीराम जी अपने माता पिता के लाडले और पढ़ने-लिखने में प्रवीण पुत्र थे। उन्हें प्रायः अपने पिता के साथ ही रहना पड़ता था। जहाँ-जहाँ बदली होती थो. या जाना पड़ता था, वहीं-वहीं पिता जी के साथ जाते और नये-नये अनुभवों को प्राप्त करते। बाद में आपकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। शिक्षा का अधिक समय बनारस में बिताया। क्वीन्स कालेज के स्कूल से आपने एंट्रेंस की परीक्षा दी थी। उस समय बनारस में प्रसिद्ध हैडमास्टर पं० मथुराप्रसाद जी की योग्यता की धूम थी। आपने उन्हीं के निरीक्षण में स्कूल की शिक्षा समाप्त की। जिस वर्ष आपने स्कूल की शिक्षा समाप्त की उसी वर्ष माता का देहान्त हो गया। प्रेममयी माता के

देहान्त से लाडले पुत्र को कितना दुःख हुआ करता है इसे वे ही जानते हैं, जिन्हें ऐसी दुर्घटना देखने का अवसर मिला हो। इस दुःखदायी घटना के कुछ समय बाद ही मुंशीराम जी ने बड़ी उत्तमता से एंट्रेंस पास किया।

हवा के झोंके

स्कूल का जीवन समाप्त करके मुंशीराम जी ने बनारस के क्वीन्स कॉलेज में प्रवेश किया। उस समय बनारस कॉलेज में बड़े-बड़े योग्य व्यक्ति कार्य करते थे। कॉलेज के प्रिन्सिपल ग्रिफिथ साहब थे, जिन के किये हुए ऋग्वेद और रामायण के अनुवाद उस समय बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। अंग्रेजी के प्रोफेसर पं. लक्ष्मीशंकर एम. ए. थें। उन की प्रतिष्ठा भी खूब थी। मुंशीराम जी का कॉलेज का जीवन विचित्र था। कभी पढ़ाई का शौक, कभी कविता की धुन, कभी उपन्यास लिखने की लटक और कभी आवारगी। घर में धन बहुत था। शहर-कोतवाल के पुत्र होने से बहुत से ऐसे अधिकार प्राप्त थे, जो सबको प्राप्त नहीं होते। इस कारण मुंशीराम जी का विद्यार्थी-जीवन समान नहीं रहा। उस में बहुत से उतार चढ़ाव रहे।

बनारस में रहते समय की दो-एक घटनाएं विशेषरूप से वर्णन करने योग्य हैं। उन्हीं घटनाओं से चरित्र-नायक के चरित्र पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। १८७६ में प्रिंस आफ वेलज भारत भ्रमण करने आये थे। वे बनारस कालेज को भी देखने गये। आस-पास के राजे-महराजे भी सलाम करने के लिये बनारस में जमा हुए। उस समय कोमल हृदय युवक ने जो दृश्य देखा, उसका उन पर गहरा असर पड़ा। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जैसे छोटी हैसियत के कर्मचारी देसी राजों को इस तरह धमकाते और आँख दिखाते थे, जैसे वे साधारण अपराधी हैं। इस से नवयुवकों को अंग्रेजी अफसरों के अनुचित असभ्य व्यवहार और राजाओं की अशक्त दशा का पूरा पता लग गया।

ला० नानकचन्द जी मूर्ति-पूजक, अत्यन्त श्रद्धालु और धार्मिक प्रकृति के भक्त थे। कुल-क्रम से उन के सब पुत्र भी मूर्ति-पूजक ही थे। मुंशीराम जी पहले ही से धुन के पक्के थे। जो धुन सवार हुई, तन्मय हो गये। बनारस में मूर्ति-पूजा की धुन सवार हुई। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल पाँचों देवताओं की पूजा करने का नियम पालन करते थे तब मुंह में अन्न-जल डालते थे, उस से पहले नहीं। महीनों तक यही नियम रहा। एक दिन आप नियत समय पर विश्वनाथ जी के मन्दिर के द्वार पर पहुंचे। अन्दर घुसना ही चाहते थे कि सिपाही ने रोक दिया। पूछने पर बताया गया कि अन्दर रीवां-नरेश की महारानी आई हुई हैं, जब वह बाहिर आयेंगी,—तब प्रवेश की आज्ञा होगी। भक्त के भक्तिपूर्ण हृदय पर आघात पहुंचा। क्या भगवान् का द्वार भी बन्द किया जा सकता है? क्या एक रानी विश्वनाथ जी की दृष्टि में दूसरों लोगों से अधिक आदरणीय है। यह विचार चित्त में उत्पन्न हुआ, और "भक्तवर मुंशीराम" विश्वनाथ के द्वार से 'नास्तिक-वर मुंशीराम" बन कर लौटे।

बनारस में मुंशीराम जी का उठना-बैठना बहुधा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की मंडली में रहता था, आप प्रायः भारतेन्दु जी के वस्त्र, आभूषण और रहन सहन के हाल सुनाया करते थे। जरी के गोटे वाले कपड़े, तिलाई टोपी, घुंघराले बाल, नौकर के हाथ में छाता, आशु कविता, भारतेन्दु की ये सब बातें आप की आँखों देखी हुई थीं। उन की निर्भयता के भी कई दृष्टान्त आप को याद थे। बनारस में आप आमोद-प्रामोद के लिए जिस युवक-मण्डली के बीच में बैठते थे, उसके एक सभ्य भारत-जीवन-प्रेस के स्वामी बा. रामकृष्ण वर्मा भी थे। मुंशीराम जी के पुराने कालेज के साथियों में स्वनाम-धन्य पं. मोतीलाल नेहरू जी थे। कालेज में दोनों साथ-साथ की श्रेणियों में पढ़ते थे। फिर देर तक दोनों एक दूसरे को भूले रहे। बहुत पीछे दोनों पुराने परिचित मित्र, पंजाब के मार्शल ला के पीछे तब मिले, जब दोनों ही महापुरुष जख्मी पंजाब के अंगों की मरहम-पट्टी कर

रहे थे। उस समय दोनों ने अपने पुराने नोट मिलाये, और आधी शताब्दी-भर के जीवन की तुलना की।

इन दिनों आप को मूर्ति पूजा के प्रति अश्रद्धा हो गई थी। एक रोज घूमते हुए आपने रोमन कैथलिक गिर्जे का घण्टा सुना। इस स्वर की मधुरता से आकृष्ट होकर मुंशीराम जी गिर्जे में चले गये और प्रार्थना सुनने लगे। फादर जकरिया, जो वहीं के बड़े पादरी थे, एक नया शिकार देख कर बड़ी उत्सुकता-से लपके और उन्होंने नव-युवक को फांसने के लिये अनेक ढङ्ग रचे। कुछ दिनों तक नवयुवक का हृदय भी उधर झुका रहा परन्तु कुछ दिनों बाद ही, फादर की अनुपस्थिति में उस के घर पर एक नन और नाविस में ऐसा अनु-चित सम्बन्ध देखा कि हृदय जिस वेग से गिर्जे की ओर बढ़ा था, उसी वेग से पीछे को लौट पड़ा। उस दिन से असन्तुष्ट नवयुवक के हृदय-द्वार ईसाइयत के लिए सदा को बन्द हो गये।

विवाह और शिक्षा

१८७७ में आपका विवाह हो गया। यह विवाह बहुत ही महत्त्व-पूर्ण था। जालन्धर के प्रसिद्ध रईस ला० शालिग्राम जी का परिवार जिन की पुत्री शिवदेवी से इन का विवाह हुआ, द्वाबे में मशहूर और प्रतिष्ठित है। कन्या महाविद्यालय जालन्धर के संचालक ला० देव-राज जी, जालन्धर के प्रसिद्ध बैरिस्टर रायजादा ला० भगतराम जी उन्हीं के सुपुत्र थे और पंजाब के विख्यात काँग्रेसी कार्यकर्ता थे। ला० हंसराज जी एम. पी. उन्हीं के सुपुत्र थे। इन तीनों से बड़े भाई ला० बालकराम जी थे। मुंशीराम जी का सब भाइयों से अधिक प्रेम बालकराम जी से ही था।

१८७८ में मुंशीराम जी इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कालेज की एफ. ए. क्लास में भर्ती हुए। यह समय उमङ्ग का था। 'यौवनं धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता' यह चारों बातें एकत्र हो गई थीं। यौवन था ही, पिता जी की ओर से खर्च के लिए कोई बड़ा बन्धन नहीं

था। कोतवाल का लड़का अपने को प्रभु मानता ही है, बस इन बातों से जितनी अविवेकता उत्पन्न हो जानी चाहिए, वह पूरी मात्रा में विद्यमान थी। शराब खूब उड़ती थी, नास्तिकता जोरों पर थी। नाटक-मंडली आदि चलाने का शौक था। शराब पीने की आदत सीमा को लांघती जाती थी। इस कारण स्वास्थ्य नष्ट होने लगा। स्वभाव से ही आप का शरीर लम्बा-चौड़ा और हृष्ट-पुष्ट था। शरीर की बनावट को बताना व्यर्थ है, क्योंकि स्वामी श्रद्धानन्द जी के लम्बे कद और अनेक बीमारियों से घिरे होने पर भी गरांडील शरीर से देश-भर परिचित हो चुका था। आप की खुराक उस समय दो व्यक्तियों जितनी थी। जब पूरे वेग से चलते थे, तब साधारण आदमियों को दौड़ना पड़ता था। इतना हृष्ट-पुष्ट शरीर भी अधिक व्यतिक्रमों के प्रभाव से रोगी होने लगा। दो-एक बार बहुत ही भयानक दशा हो गई। आखिरकार डाक्टर और वैद्य हार गये। एक जुएबाज 'लल्ला जी' हकीम थे। उन के इलाज से आराम हुआ। उस समय तो स्वास्थ्य ठीक हो गया परन्तु परीक्षा पर बुरा असर पड़े बिना न रहा। ठीक परीक्षा के समय आप रोगी हो गये और रसायन के पर्चे में फेल हुए। फेल हो कर आपने कालेज छोड़ दिया और अपने पिता जी के पास बरेली में आ गये। यहाँ आप को पहले-पहल ऋषि दयानन्द के दर्शन हुए। इस समय आप कट्टर नास्तिक थे। योरोप के नास्तिकों के ग्रन्थों ने सन्देह-शील हृदय को पूरा-पूरा अविश्वासी बना दिया था। नास्तिक मुंशीराम ऋषि के पास पहुंचे और ईश्वर के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछे। ऋषि के युक्ति-युक्त उत्तर सुनकर योरोप के नास्तिकों की युक्तियां निर्मूल, और असार प्रतीत होने लगीं। युक्तियों का खण्डन हो गया, परन्तु हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ। आपने ऋषि से कहा—'महाराज, आपने मुझे निरुत्तर तो कर दिया, परन्तु ईश्वर पर विश्वास नहीं कराया।' ऋषि दयानन्द ने उत्तर दिया—'भाई, मैंने कब दावा किया था कि मैं तुम्हें

विश्वास करा दूंगा ? मैं तो केवल प्रश्नों का उत्तर दे सकता था। विश्वास तो तभी होगा, जब ईश्वर की कृपा होगी।' वही हुआ भी। एक दिन ईश्वर की कृपा हुई, नास्तिक मुंशीराम ने अपनी जीवन-नौका को विशाल संसार-सागर में ईश्वर-विश्वास के भरोसे पर छोड़ दिया।

पेशे की तालाश

१८८० ई० में पहले-पहल नौकरी में प्रवेश हुआ। वह नौकरी अन्तिम भी थी। बरेली के कमिश्नर मि० एडवर्डस् ला० नानकचन्द जी पर बड़े मेहरबान थे। आपने मेहरबानी का परिचय देते हुए कोतवाल साहब के लड़के को बिना विशेष प्रस्तावना के ही नायब तहसीलदार बना दिया। तहसीलदार छुट्टी पर गया तो मुंशीराम जी को तहसीदार का भी कार्य करना पड़ा। परन्तु आपका स्वतन्त्र हृदय अधिक समय तक नौकरी के बन्धन को न सह सका। कारण यह हुआ कि आप कमिश्नर से मिलने गये। चपरासी ने आप को बिठा कर अन्दर खबर दी। हुक्म हुआ कि थोड़ी देर ठहरो। इतने में एक अंग्रेज सौदागर आया और चट-पट अन्दर चला गया। मुंशीराम जी ने उसी समय नायव-तहसीदारी से इस्तीफा दे दिया और सदा के लिये दासता से छुट्टी पाई।

अब नौकरी छोड़ कर वकालत करने का विचार किया। लाहौर जाकर मुख्त्यारी में भर्ती हुए। पहले वर्ष परीक्षा नहीं दी। दूसरे वर्ष पिता जी की पेंशन हो गई। इस खुशी में वहुत-सा समय अपने गांव में विता दिया; इस कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहे। १८८३ में तीसरी वार परीक्षा का अवसर आया। इस वार भी साल-भर मौज में बीता। खाना-पीना और मौज उड़ाना बस यही स्वाध्याय था। जब परीक्षा में केवल २७ दिन रह गए तब मन में विचार उठा कि अब तो मुख्त्यार बन ही जाना चाहिए २७ दिनों तक लगातार घोर परिश्रम किया, रात-दिन एक कर दिये,

साल-भर की कसर निकाल दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। मुख्त्यार बन कर पहले फिल्लौर में वकालत शुरू की और कुछ समय पीछे जालन्धर में आ गए।

उस समय वकील बनने से पहले मुख्त्यारी पास करना आवश्यक था। कुछ रोज मुख्त्यारी करके आप वकालत पास करने के लिये लाहौर गए, वहां जाकर आप के जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ आपने नियत समय पर वकालत पास कर ली और वकील बन कर जालन्धर में कार्य आरम्भ कर दिया। यह तो आनुषंगिक फल था। मुख्य फल यह हुआ कि हृदय में परिवंतन हो गया। जीवन में नये परिच्छेद का प्रारम्भ हुआ। विद्यार्थी-जीवन में बरेली, बनारस और इलाहाबाद में जो जीवन बिताया था, वह क्या विचारों की और क्या कार्यों की दृष्टि से, मौज-बहार का जीवन था। जो किया वह भर-पेट किया। गिनाने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यथेष्ट धन और मद्य-सेवा के आगे पीछे कितनी बुराइयां लग सकती हैं। माता का रक्षा करने वाला हाथ सिर से उठ ही चुका था। मित्र मिले वे भी जैसे के तैसे। इस प्रकाप कुप्रवृत्तियां प्रतिदिन बढ़ती ही गईं। वीच-बीच में कई धक्के लगे। एक बार शराब की मस्ती में चूर एक अपने साथी को अपनी आँखों के सम्मुख अबला का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा करते देखा। यद्यपि आपने भी शराब पी रखी थी, पर वह अत्याचार सहा नहीं गया। मुंशीराम जी ने अपने अंतरङ्ग मित्र को धक्का देकर गिरा दिया। यह घटना वकालत के लिये लाहौर को रवाना होने से पहले हुई। बस—यहाँ से जल का प्रवाह पलट गया। उमंगी हृदय की बढ़ी हुई उमंग टकरा कर उलटी ओर को चली। लाहौर में जाकर घटनाएं ऐसी उपस्थित हुईं कि परिवर्तन की ओर होने वाला झुकाव सबल ही होता गया। लाहौर में एक ओर आर्यसमाज के उस समय के प्रधान ला० साईंदास का प्रेम-भरा संभाषण, दूसरी ओर मुनिवर गुरुदत्त के योग्यता-भरे व्याख्यान, इन्हीं सब बातों ने मिलकर केवल नास्तिक मुंशीराम को

परम आस्तिक ही नहीं बना दिया, बल्कि हृदय पर लगे हुए धक्के को सहायता देकर आचरणों में भी क्रांति उत्पन्न कर दी। एक-एक कर के सब व्यसन छूटने लगे। व्यसनों का विनाश शराब से ही शुरू हुआ। धीरे-धीरे मांस, हुक्का और पान तक छूट गये। परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ, परन्तु यहाँ तक हुआ कि आप के भोजन में रोटी, शाक और दूध के साथ नमक, मीठा और हल्दी ही बस रह गये। भोजन के शेष सब सहायक छूट गये।

समाज-सेवा का प्रारम्भ

वकालत और आर्यसमाज में एक साथ प्रवेश हुआ। वकील बन कर जालन्धर आने से पहले ही आप के सम्बन्धी लालादेव राज जी के उद्योग से आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। पहले आप आर्य-समाज की हंसी उड़ाया करते थे। लाहौर से लौट कर आप उस में शामिल हो गये। इस समय से आपने आर्यजमाज की सेवा प्रारम्भ की। यह आपका स्वभाव था और हमेशा रहा कि जो कुछ करना खूब करना और पेट-भर के करना। बुद्धि के खुले घोड़े दौड़ाए तो ईश्वर तक को जबाब दे दिया। आचरणों की बाग ढीली की, तो सभी आमोद कर लिये। जब धर्म का रास्ता पकड़ा तो दिल से, जान से, आत्मा से उसे निभाने का यत्न किया। ऋषि दयानन्द का वह वाक्य कि "ईश्वर पर विश्वास तभी होगा जब तुम पर उस की कृपा होगी" अब पूरा हो गया। ईश्वर की कृपा हुई और १८८५ ई० में आपने आर्यसमाज में प्रवेश किया।

आप का १८८५ से १९२६ तक का जीवन धर्मसेवा के ही अर्पण हुआ है। यहां इतना स्थान नहीं कि हम इन ४१ सालों के घटनापूर्ण कर्म जीवन का संक्षेप में ही वर्णन कर सकें। इन वर्षों के कार्य-वृत्तान्त के लिये एक दफ्तर की आवश्यकता है। हम यहां इन वर्षों के कार्यों को कुछ पृथक्-पृथक् भागों में बांटकर प्रत्येक के सम्बन्ध में थोड़ा-थोड़ा वर्णन करेंगे।

जब जालन्धर में आपने वकालत शुरू की, तब आप की अभिलाषा यह थी कि एक कामयाब वकील बन कर चीफ कोर्ट की जजी तक पहुंचना चाहिए। इसलिए Jurisprudence तथा अन्य कानून शास्त्र के सम्बन्ध में आपने खूब परिश्रम किया। वकालत खूब चली। इधर पारिवारिक सुख भी प्राप्त होने लगे। दो कन्याएं और दो पुत्र हुए। अब तक आप किराए के मकान में रह कर वकालत का काम करते थे, अब आपने अपनी कोठी बनवानी शुरू की। जालन्धर में आपकी कोठी प्रसिद्ध हो गई थी। बड़े चाव से यह कोठी बनवाई गई। १८९१ में आपके जीवन में वह दुःखदायक घटना उपस्थित हुई, जो प्रायः मनुष्यों के जीवनों में क्रांति उत्पन्न कर दिया करती है। आप की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। उस समय आपका सबसे छोटा पुत्र केवल दो वर्ष का था। चारों बच्चे अभी नासमझ ही थे। चारों ओर से दबाव पड़ने लगा कि बच्चों के पालन-पोषण व रक्षा के लिए दूसरा विवाह कर लें। परन्तु आप ने एक की भी न मानी; दूसरे विवाह का नाम तक न लिया। तब आप के बड़े भाई ला० आत्माराम जी अपनी धर्मपत्नी सहित जालन्धर में आ गये, दोनों भाई एक साथ रहने लगे। बच्चों के पालन-पोषण का भार बच्चों की ताई पर पड़ा, जिसे उन्होंने बड़ी तत्परता से निभाया। सार्वजनिक कार्य की ओर रुचि होने पर भी लगभग सात साल तक वकालत का कार्य किया और प्रमुख वकील हो गये। परन्तु १८९२ में जब आप आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान बने, तब आप का समय बंटने लगा, और समय का एक बड़ा भाग आर्यसमाज के अर्पण होने लगा। 'अर्थ और धर्म' में यह युद्ध देर तक जारी रहा। इधर वकालत, उधर आर्यसमाज की सेवा, दोनों ओर की खींच हृदय में हलचल मचाने लगी। यह खींचतान लभगभ आठ वर्षों तक जारी रही। अन्त में समाज-सेवा कार्य की ही जीत और वकालत की हार हुई। मित्रों, हितैषियों और बन्धुओं के सभी दूर-दर्शितापूर्ण परामर्श व्यर्थ हुए और महात्मा मुन्शीरामजी ने कचहरी में जाना बिल्कुल बन्द कर दिया।

आर्यसमाज में प्रवेश करने के कुछ समय बाद ही आप जालन्धर आर्यसमाज के प्रतिनिधि चुने गये और जालन्धर आर्यसमाज के प्रतिनिधि बनकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (लाहौर) में भी सम्मिलित होते थे। इस समय लाहौर में डी. ए. वी. कालेज की स्थापना की धूम थी। पं. गुरुदत्त जी का प्रभाव सर्वोपरि था। महात्मा मुन्शीराम जी भी पं० गुरुदत्त के विशेष भक्तों में सम्मिलित होकर अष्टाध्यायी और संस्कृत के अन्य ग्रन्थों के पठन-पाठन में लग गये। शीघ्र ही डी. ए. वी. कालेज के संचालक आर्य-पुरुषों में मतभेद पैदा हो गया। पं० गुरुदत्त जी वेद, अष्टाध्यायी और निरुक्त के भक्त थे। वह समझते थे कि जो दयानन्द कालेज ऋषि दयानन्द की यादगार में बनाया गया है उसमें वेद और वेदांग की पढ़ाई होनी आवश्यक है। दूसरा पक्ष मानता था कि यह आवश्यक नहीं और शिक्षा समय के अनुसार ही होनी चाहिए। अष्टाध्यायी आदि का बोझ डालना ठीक नहीं। इस मतभेद ने धीरे-धीरे उग्र रूप धारण किया। अष्टाध्यायी के विरोधी दल में भी आर्यसमाज के बड़े-बड़े नेता थे। महात्मा मुन्शीराम जी की सम्मति पं० गुरुदत्त जी से मिलती थी। वह भी यही मानते थे कि जिस संस्था को आर्यसमाज ने ऋषि दयानन्द की स्मृति में स्थापित किया है, उसमें वेद-वेदांग की पढ़ाई न हो तो फिर संस्था की आवश्यकता ही क्या है? यह झगड़ा देर तक चला, और अन्दर ही अन्दर बढ़ता हुआ पीछे से विशाल रूप में परिणत हो गया।

पार्टी के नेता

१८९० में पं. गुरुदत्त जी अकाल मृत्यु के ग्रास हुए। तब उस समूह का नेतृत्व आप पर आ गया, जो डी. ए. वी. कालेज पाठविधि में संस्कृत का अधिक प्रवेश कराना चाहता था। १९१२ में आप आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुने गये। इसके अनन्तर घटना-चक्र शीघ्र-शीघ्र बदलने लगा। उसी वर्ष आर्यसमाज लाहौर के उत्सव के समय मांस-भक्षण का झगड़ा भी चल पड़ा। आर्यसमाज के कुछ सभ्यों ने

भरी सभा में यह उद्घोषित कर दिया कि वे मांस-भक्षण को वेद के या धर्म के विरुद्ध नहीं समझते। ये सज्जन वे ही थे, जो पाठविधि सम्बन्धी झगड़े में पं० गुरुदत्त जी के प्रतिपक्षी थे। जहाँ पहले आर्यसमाज का आन्तरिक मतभेद एक विषय में था, वहाँ अब दो विषयों में हो गया। दो दलों में से एक दल का नेतृत्व धीरे-धीरे महात्मा मुन्शीराम जी के कन्धों पर पड़ा।

आर्यसमाज के आंतरिक झगड़े की दुःखजनक कथा का वर्णन आवश्यक नहीं है। उसके लिए न तो यह उपयुक्त स्थान ही है, न अवसर ही। यहाँ तो इतना ही बता देना पर्याप्त है कि झगड़ा धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करता गया। १८९१ में मांस-भक्षण का झगड़ा शुरू हुआ। १८९३ में आर्य प्रतिनिधि सभा के चुनाव पर उसी दलबन्दी को लक्ष्य में रख कर भारी प्रतिद्वन्द्विता हुई। १८९४ में झगड़ा चरम सीमा को पहुंच गया। डी. ए. वी. कालेज की कमेटी के अधिवेशन में बल-प्रयोग तक की नौबत आ गई। इन वर्षों में उस दल के नेता, जिसे अब हम महात्मा पार्टी कह सकते हैं, महात्मा मुन्शीराम जी रहे। आपने १८९० में आर्यसमाज की लेखबद्ध सेवा के लिए 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र निकाला। उसने उन दिनों बड़ा काम किया। उन दिनों आप को कितना कार्य करना पड़ा, इसका अनुमान शायद इस बात से लग सके कि आप के प्रतिपक्षियो में राय मूलराज एम. ए., महात्मा हंसराज, ला० लाजपत राय और ला० लालचन्द्र एम. ए. आदि धुरन्धर प्रभावशाली सज्जन थे। १८९४ में दोनों दल पृथक्-पृथक् हो गये। डी. ए. वी. कालेज राय मूलचन्द्र जी की पार्टी के हाथों में रहा। वह पार्टी 'कालेज-पार्टी' या 'कल्चर्ड-पार्टी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'महात्मा-पार्टी' के हाथ में आर्य प्रतिनिधि सभा रही, और वेद-प्रचार के नाम से आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। १८९५ में आर्य प्रतिनिधि सभा की रजिस्ट्री हो गई। इस समय पार्टियों की प्रतिद्वन्द्विता एक ओर, और आर्यसमाज के

कार्य का उत्साह दूसरी ओर इन दोनों ने मिल कर वकालत को पट कर दिया। सारा समय 'सद्धर्म प्रचारक' के सम्पादन और प्रचार के दौरों के अर्पण होने लगा। घर का काम-काज गौण हो गया। महीने के तीस दिन घर के बाहर ही बीतने लगे। इन दौरों में आप के प्रमुख साथी पं० लेखराम जी थे।

पं० लेखराम जी

यहाँ पर कुछ घटनाओं की ओर निर्देशमात्र ही किया जा सकता है। इस छोटी-सी जीवनी में विस्तार से वर्णन नहीं हो सकता। अत्यन्त परिश्रम और रात-दिन कार्य करने से १८९६ में आप को उन्निद्र रोग हो गया। १९ रातों तक बिल्कुल नींद नहीं आई। अनेक उपाय किये गये, पर कुछ भी फल न हुआ। अन्त को पहाड़ पर जा कर कुछ समय विश्राम करने से नींद फिर आने लगी। १८९७ में धर्म-वीर पं० लेखराम जी का एक मुसलमान के हाथ से वध हुआ। महात्मा जी और पं० लेखराम जी का भाई-भाई का-सा प्रेम था। पं० लेखराम जी की मृत्यु के समय महात्मा जी भी उपस्थित थे। पं० लेखराम जी का अन्तिम सन्देश यही था कि "लेख का कार्य बन्द न होने पावे।" उसी सन्देश को सिर आंखों पर रख कर महात्मा जी ने बहुत-सा समय और अपना बहुत-सा द्रव्य पंडित लेखराम जी के और कुछ अपने लिखे हुए ग्रन्थों के छपाने में खर्च किया। १८९८ में पं० गोपीनाथ के साथ आपके वे प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुए, जिनका आर्य-समाज के इतिहास में विशेष स्थान है। जालन्धर के कन्या महा-विद्यालय के संस्थापन में आपका विशेष हाथ था। आप उसके जन्म-दाताओं में से एक थे। आप और ला० देवराज जी दोनों ने मिलकर बहुत वर्षों तक विद्यालय को चलाया। जब आप गुरुकुल के कार्य में लग गये, तब महाविद्याय के कार्य का सारा बोझ ला० देवराज जी पर ही पड़ा। आज उस कन्या महाविद्यालय की जो उन्नत दशा है, वह आप के और ला० देवराज जी के परिश्रम का फल है।

गुरुकुल का स्वप्न

डी. ए. वी. कालेज को असफल समझ कर महात्मा जी के हृदय में यह भावना दृढ़ हो गई थी कि जब तक ब्रह्मचर्याश्रम की रक्षा के लिए गुरुकुल की स्थापना न होगी, तब तक ऋषि दयानन्द का अभिप्राय या उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, न भारतवर्ष की शिक्षा का प्रश्न ही हल हो सकता है। आप को विश्वास हो गया था कि आर्यसमाज के लिए गुरुकुल की स्थापना अत्यन्त आवश्यक है।

गुरुकुल की आवश्यकता का अनुभव करके आपने अपना विचार प्रस्ताव रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सामने उपस्थित किया। २५ नवम्बर १८९८ के अधिवेशन में यह स्वीकृत हुआ। सभा ने निश्चय किया कि प्रारम्भिक खर्च के लिए ८००० रुपया इकट्ठा हो जाने पर उक्त संस्था खोल दी जाय। कुछ समय तक नियम आदि बनते रहे। १८९९ में यह देखकर कि गुरुकुल की स्थापना का कार्य बहुत सुस्त चल रहा है, आप घर से निकल खड़े हुए और 'सद्धर्म प्रचारक' में यह घोषणा कर दी कि जब तक गुरुकुल के लिए ३०,००० रु० एकत्र न कर लेंगे घर में पाँव न रखेंगे। सात महीने तक आप भारत में भ्रमण करते रहे। उस समय गुरुकुल का नाम तक कोई नहीं जानता था। आप जहां कहीं जाते थे लोग गर्दन हिला कर कहते थे कि "बेचारा था तो कभी अच्छा, अब इसे क्या हो गया ?" क्योंकि वे गुरुकुल की स्थापना के विचार को एक पागलपन समझते थे। देश में दुर्भिक्ष था, ऐसे समय में ३०,००० रुपये एकत्र कर लेना कोई साधारण वात नहीं थी। वकालत समाप्त हो गई, प्रेस का काम अस्त-व्यस्त हो गया, घर के धन्धों से पहले ही जुदा रहते थे, अब तो एकदम सम्बन्ध ही टूट गया। अस्तु, अभीष्ट द्रव्य एकत्र हो गया। आर्यसमाज ने आप को अपूर्व प्रतिष्ठा दी। उसी समय से सेवा का आदर करने वाले समाज ने आप को 'महात्मा' की पदवी से अलंकृत किया, जो कि आप के सर्वथा योग्य थी।

स्वप्न सच्चा हुआ

हरिद्वार के समीप स्थान चुना गया, जो दान-रूप में ही प्राप्त हो गया। २ मार्च, १९०२ को नीलगिरि और नीलधारा के बीच, विशाल जंगल में कुछ झोपड़ियाँ बना कर ३० के लगभग ब्रह्मचारियों को साथ ले आप वहां पहुंचे। आप उसके पहले मुख्याधिष्ठाता बने। वकालत पहले ही छूट गई थी, प्रेस का काम भी दूसरों पर डालना पड़ा। सब कुछ छोड़ कर आप गुरुकुल की धुन में मस्त हो गये। धीरे-धीरे सब कुछ गुरुकुल के अर्पण कर दिया। गुरुकुल में सबसे पहले आपने अपने दोनों पुत्र भर्ती किये। कुछ साल पीछे अपना प्रसिद्ध "सद्धर्म-प्रचारक प्रेस" गुरुकुल को दान दे दिया। जालन्धर वाली कोठी बाकी थी। उसमें हज़ारों रुपये का सामान था। कोठी खाली पड़ी रहती थी, इस कारण जिसके हाथ जो लगा, वह उसे ले गया। अन्त में वह कोठी भी गुरुकुल को दान दे कर आपने सर्वमेध-यज्ञ को पूर्ण किया। १९०९ से १९१७ तक आप एकमात्र गुरुकुल की धुन में मस्त रहे। आज गुरुकुल जिस उन्नत दशा में है, उसे देश-भर जानता है। वह आपके बलिदान का साक्षी और आर्यसमाज के धर्म-प्रेम का फल है। इस समय वह देश भर का एक प्रधान राष्ट्रीय विश्वविद्यालय है; इसमें कोई सन्देह नहीं।

आर्यसमाज की रक्षा

आर्यसमाज के जन्म काल से ही ईसाई पादरियों और मुसलमानों ने अपने धर्म की हानि देख कर आर्यसमाज का विरोध आरम्भ कर दिया था। अन्त में उन्होंने आर्यसमाज को ब्रिटिश गवर्नमेंट का कोप-भाजन बनाने के उद्देश्य से उसे विशुद्ध राजनैतिक संगठन सिद्ध करने का यत्न किया। भारत में राजनैतिक जागृति हो ही रही थी। सन् १९०९-१९१० में लण्डन के टाइम्स अखबार के सम्वाददाता सर वैलनटाइन शिरोल भारत में पधारे और उन्होंने कुछ विशेष लेख आर्यसमाज के खिलाफ भी लिखे। प्रसंग से १९०९ ई० में आर्यसमाज

के प्रमुख कार्य-कर्त्ता ला० लाजपत राय, भाई परमानन्द जी भी राजनैतिक आन्दोलन में लपेट लिये गये। चारों तरफ यह आन्दोलन हुआ कि आर्यसमाज एक विशुद्ध राजनैतिक संस्था है और उसको दबाया जाय। सरकारी सेवाओं में जहां आर्य लोग थे उन पर नजर रखी जाने लगी। सन् १९०९ ई० के अक्टूबर में, मिस्टर वारबर्टन डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट पटियाला ने वहाँ के सब आर्य पुरुषों को इस बिना पर गिरफ्तार कर लिया कि आर्यसमाज एक राजद्रोही संस्था है और विभिन्न सम्प्रदायों में विद्वेष फैलाता है। ऐसी दशा में जब कि चारों ओर अन्धकार दिखाई देता था, महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने मुकद्दमे की पैरवी का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। उस समय लाहौर आर्यसमाज के ३१वें वार्षिकोत्सव पर उन्होंने जो अपना सुप्रसिद्ध व्याख्यान दिया उससे आर्य पुरुषों में उत्साह की लहर दौड़ गई। उस व्याख्यान में उन्होंने ला० लाजपत राय तथा भाई परमानन्द जी को बड़ा उच्च श्रेणी का देश-भक्त बताया और उनको निर्दोष भी सिद्ध किया। जब कभी भी आर्यसमाज पर आँच आई महात्मा जी सदैव उसकी रक्षा करते रहे। इस प्रकार आर्यसमाज पर आये हुए काले बादल महात्मा जी के साहसपूर्ण और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य संचालन से विच्छिन्न होते गये।

राष्ट्रीयता के संग्राम में

१९१७ में आप ने संन्यास लिया। उस समय हरद्वार में आर्य-जनता एकत्र हुई और सर्वमेध यज्ञ की साक्षी बनी। श्रद्धा से प्रेरित हो कर ही आप जन्म-भर कार्य करते रहे, इस कारण आपने अपना नाम 'श्रद्धानन्द' रखा। संन्यास लेकर आपने विस्तृत कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। आप आर्यसमाज की सार्वदेशिक सभा के पहले ही से प्रधान थे। यह सभा आप के ही प्रयत्न का फल थी। संन्यास लेकर एक तो आपने इस सभा के कार्य की ओर अधिक ध्यान दिया, और दूसरा कार्य जिसमें आपने योग दिया वह देश का धर्मयुद्ध था। आप

स्वभाव से ही सरल, और इसलिए कुटिलनीति के विरुद्ध थे। साथ ही विलायती फैशन और विदेशी ढंग आप को कभी पसन्द नहीं थे। 'सत्य' और 'ब्रह्मचर्य', ये दो सिद्धान्त आपके संचालक थे। इस कारण आप १९१९ से पूर्व कांग्रेस की राजनीति के कड़े समालोचक रहे। मांगकर या परावलम्बन से स्वराज्य पाने की चेष्टा आपके सिद्धान्तों के विरुद्ध थी। दिल्ली के सत्याग्रह में आप ने राजा और प्रजा की भलाई की दृष्टि से जो कार्य किया, उसे सम्पूर्ण देश जानता है। गोरखों की ग्यारह किर्चें सीने पर लगी हुई थीं, उस समय भी आप निर्भय, शान्त रहे, और जनता को शान्त रहने का उपदेश करते रहे। वह भारत के इतिहास में एक स्वर्णिम दिन था, जब जामा मस्जिद के मिम्बर पर खड़े हो कर एक संन्यासी (श्रद्धानन्द) ने हिन्दू-मुसलमानों की एकता पर धर्म की छाप लगा दी, और शहीदों के लिए मंगल-कामना करके देश-भक्ति और धर्म के अच्छेद्य सम्बन्ध की घोषणा की।

मार्शल ला के शासन से पीड़ित पंजाब के अंगों के घाव पर मरहम लगाने के लिए पं० मदन मोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू आदि जो महानुभाव पंजाब में पहुंचे, स्वामी श्रद्धानन्द जी भी उनमें मुख्य थे। अनाथों और विधवाओं को सहायता देने का काम आपने अपने जिम्मे लिया, और सेवा-समिति के उपप्रधान की हैसियत से प्रांत-भर में भ्रमण करके उस समय जागृति उत्पन्न की, जिस समय एक अचिन्तित आपत्ति के आतंक से प्रांत का शरीर मूर्छित दशा मे पड़ा हुआ था। उस वर्ष के अन्त में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में होने को था। दुःखित पंजाब, उस पर भी वह अमृतसर, जिसके अंग प्रत्यंग छिदे पड़े थे, कांग्रेस का अधिवेशन कर सकेगा, यह किसी को आशा नहीं थी। यह प्रस्ताव किया गया कि अमृतसर में कांग्रेस न की जाय। आपने इस प्रस्ताव का भारी विरोध किया। तब कांग्रेस करने का बोझ आप ही पर आ पड़ा। आप स्वागतकारिणी समिति

के सभापति बनाये गये। कांग्रेस का अधिवेशन किस खूबी से हुआ और कैसे सुन्दर ढंग से समाप्त हुआ, यह बताने की आवश्यकता नहीं। उस अचिन्तित कृतकार्यता में आपका सबसे अधिक हाथ था।

हिन्दी-प्रेम

हिन्दी भाषा से आप को गहरा प्रेम था। जब 'सद्धर्म-प्रचारक' उर्दू में था, तब भी उस की भाषा आधी हिन्दी होती थी। सद्धर्म-प्रचारक अपने जीवन के १७ वर्ष उर्दू के कलेवर में काट कर १६०७ में नागरी अक्षरों में निकलने लगा। उस समय सद्धर्म-प्रचारक को हिन्दी लिपि व भाषा में परिवर्तित कर देने से आप को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी। पंजाब में हिन्दी के पढ़ने वाले बहुत कम हैं। परन्तु आदर्श-प्रियता की लगन में आर्थिक हानि-लाभ का दृष्टिकोण आप के सिद्धान्तों के बहिर्गत था। आप अर्दू के ओजस्वी लेखक थे। 'उपदेश-मंजरी' 'सुबह उम्मीद' आदि कई ग्रन्थ आप ने उर्दू में लिखे हैं। हिन्दी में आप ने धर्मवीर पंडित लेखराम का जीवन-चरित्र, 'आदिम सत्यार्थ-प्रकाश' आदि कई ग्रन्थों के अतिरिक्त धर्म-विषय पर बहुत से छोटे-छोटे ट्रैक्ट भी लिखे हैं। उर्दू-प्रधान पंजाब में नागरी अक्षर और हिन्दी के प्रचार का प्रधान श्रेय आप को ही है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के भागलपुर के अधिवेशन में, इन्हीं सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप, हिन्दी-भाषी-जनता ने आप को सभापति चुना। अपने प्रारम्भिक भाषण में आपने हिन्दी के स्थान पर 'मातृभाषा शब्द' का प्रयोग किया था। सन् १६२४ में दिल्ली में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ उसमें आप स्वागतकारिणी सभा के अध्यक्ष बनाये गये।

गुरुकुल

१६१७ में संन्यास लेकर स्वामी जी गुरुकुल से चले गये, और दिल्ली में आसन जमाया। १६१६ के अन्त में अमृतसर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अभी आप अमृतसर में ही थे, जब गुरुकुल के

संचालकों की ओर से आप से यह प्रार्थना की जाने लगी कि आप गुरुकुल को पुनः संभालें। यद्यपि राष्ट्र-सम्बन्धी कार्य में स्वामी जी के पांव बहुत उलझ चुके थे, तो भी गुरुकुल की रक्षा का आकर्षण भी कुछ कम न था। गुरुकुल स्वामी जी के धार्मिक, सामाजिक और नैतिक आदर्शों का केन्द्र था। हृदय के प्रिय सब आदर्शों को आप गुरुकुल में कार्य-परिणत करना चाहते थे। जब गुरुकुल की रक्षा के नाम पर आग्रहपूर्वक बुलाया गया तो समाज-सेवा के सब बाह्य बन्धनों को तोड़ कर आप गुरुकुल में वापिस चले गये।

असहयोग के मैदान में

लगभग दो वर्ष स्वामी जी दुबारा गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य बनकर राष्ट्रीय शिक्षा के विचार को क्रियारूप में परिणत करने का उद्योग करते रहे, परन्तु इस का यह तात्पर्य नहीं कि बाहिर के विस्तृत कार्यक्षेत्र से पृथक् हो गये। राष्ट्रीय जीवन में उन का जो स्थान बना था, उसे वह बराबर पूर्ण करते रहे।

१९२१ में भारत का राजनैतिक वायु-मण्डल फिर गर्म हो गया। असहयोग और सत्याग्रह की दुन्दुभि चारों ओर बजने लगी। देश-भक्तों को जेल में ठूंसा जाने लगा। महात्मा गांधी के रणाह्वान को सुनकर देश के युवक-हृदय स्वाधीनता की वेदी पर आहुति देने के लिये 'मैं पहले' 'मैं पहले' की पुकार मचाते हुए आगे बढ़ने लगे। मातृ-भूमि का हृदय उच्छ्वसित हो उठा। संसार सोये हुए भारत रूपी अजदहे को आश्चर्य चकित नेत्रों से जागने और हिलने की चेष्टा करते हुए देखने लगा। जब रण की भेरी बज रही हो, तब बांका क्षत्रिय पहाड़ की तलैटी में बैठ कर क्या करता? १९२० के अन्त में स्वामी जी बहुत रोगी हुए। नागपुर की कांग्रेस से लौटे तो इन्फ्लुएंजा ज्वर हो गया, और उस के पीछे बहुत समय तक ब्राईट्स-डिजीज नाम की बीमारी से घिरे रहे। डा० अन्सारी की दवाओं, डा० सुखदेव की चिकित्सा से आप नीरोग तो हो गये, परन्तु पूरी तरह

स्वस्थ न हो सके। इसी दशा में कई मास तक रहने पर भी कुछ सेहत अच्छी हुई थी कि असहयोग की लड़ाई गर्म हुई। रणभेरी पर नाचने वाला हृदय शान्त न बैठ सका। गुरुकुल का बोझ दूसरे कन्धों पर डाल कर स्वामी जी फिर मैदान में उतरे और १९२१ के अन्त में भारत की राजधानी में आसन जमाया।

अहमदाबाद कांग्रेस

१९२१ के अन्त में कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। वह अधिवेशन भारत की राष्ट्रीयता के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। देश आशा के घोड़े पर सवार होकर सरपट भागा जा रहा था। रास्ते में कोई खाई या कुंआ भी आ सकता है इस का किसी को ध्यान तक न था। तिलकनगर में लगभग दो लाख आदमी एकत्र हुए। एक वेश था, एक भाव था, एक लगन थी। तिलक नगर में खद्दर ही खद्दर दिखाई देता था। एक विशेषता यह थी कि उस संपूर्ण स्वराज्य की बस्ती में एक भी पुलिस का सिपाही नहीं था। सारा प्रबन्ध जाति के अपने हाथों में था। स्वामी जी भी उस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे, और न्यायाधीश का कार्य उन के सुपुर्द था। जो सन्दिग्ध या अपराधी आदमी पकड़ा जाता था, स्वयं सेवक उसे स्वामी जी के पास पकड़ लाते। स्वामी जी उस से अपराध स्वीकार करा लेते और यह वायदा करा कर कि फिर ऐसा न करूंगा, छोड़ देते थे। स्वामी जी ने उस स्मरणीय कांग्रेस में पूरा सहयोग दिया, और महात्माजी को आश्वासन दिलाया कि स्वराज्य की लड़ाई में वह उन के साथ रहेंगे।

बारदौली और उस के पीछे

'उदय और अस्त' के नियम के अनुसार अहमदाबाद के पीछे बारदौली का नम्बर आना जरूरी था। अहमदाबाद में राष्ट्र की आशा जिस ऊंचाई पर चढ़ गई थी, उस पर देर तक रहना कठिन था। दो ही सम्भावनायें थीं। या तो असंभव संभव हो जाता और

सदियों का गुलाम देश एक दम स्वाधीन हो जाता, अथवा ऐसी टक्कर लगती कि संभावना असम्भव हो जाती। भारत के ऐसे भाग्य कहाँ कि पहली संभावना पूरी होती। आशा के जोश ने जिस खाई को नहीं देखा था वह सामने आ गई। महात्मा गांधी ने बारदौली के सत्याग्रह को स्थगित कर दिया। देश का उत्साह पहाड़ के शिखर पर से उतरा तो गढ़े में जा गिरा।

स्वामीजी सत्याग्रह के संग्राम में महात्मा गांधी जी के साथ थे, परन्तु एक-दो बातों में उन का सदा मत-भेद रहा। भेद की एक बात यह थी कि जहाँ महात्मा जी सार्वदेशिक अहिंसा को सत्याग्रह को आवश्यक शर्त मानने थे, वहां स्वामी जी की सम्मति थी कि सार्वदेशिक अहिंसा असंभव है। जो लोग सत्याग्रह करें उन का अहिंसाव्रती होना पर्याप्त है, यह आवश्यक नहीं कि देशभर में कहीं भी हिंसा न हो। यदि सार्वदेशिक अहिंसा की शर्त रखी जायेगी तो कभी सत्याग्रह हो ही नहीं सकता। चौरी-चौरा की घटना से प्रभावित होकर महात्मा जी ने बारदौली के सत्याग्रह को स्थगित कर दिया। स्वामी जी ने उसे पसन्द नहीं किया। उनकी सम्मति थी कि केवल एकदेशी हिंसा से सत्याग्रहियों का अपने प्रण से विचलित होना उचित नहीं है।

दलितोद्धार और कांग्रेस

सत्याग्रह को स्थगित करते हुए महात्मा गांधी ने कांग्रेस के सम्मुख जो कार्यक्रम रखा था उस का एक विशेष अङ्ग 'अछूतोद्धार' था। स्वामी जी अछूतोद्धार की आवश्यकता को देर से अनुभव कर रहे थे। गुरुकुल की स्थापना से पूर्व ही आर्यसमाज जालन्धर की ओर से रहतियों (चमारों) की शुद्धि कर के आप दलितोद्धार की बुनियाद डाल चुके थे। आप गुरुकुल कांगड़ी में भी उच्च कुल के छात्रों के साथ-साथ मेघ जाति के बालकों को प्रविष्ट कर के यह भी दिखला चुके थे कि क्रियात्मक अछूतोद्धार किस तरह किया जा सकता है।

दिल्ली में आप के सामने अछूत की समस्या जीवित-रूप में उपस्थित हुई। रुपये का प्रलोभन देकर पादरी, और जूते की बिक्री का दबाव डालकर मुसलमान व्यापारी चमारों को अपने चंगुल में फंसाने का यत्न कर रहे थे। उनकी रक्षा के लिये उन्हीं दिनों स्वामी जी की प्रेरणा से उनकी संरक्षकता में 'दलितोद्धार सभा' कायम हो चुकी थी। जब कांग्रेस ने अछूतोद्धार के कार्य को अपने हाथ में लेने का निश्चय किया तब स्वामी जी रचनात्मक कार्य के उस अङ्ग में अपनी संपूर्ण शक्ति लगाने के लिए उद्यत हो गये। आप के प्रस्ताव पर अछूतोद्धार के कार्य के लिये कमेटी बनी और चन्दे की अपील भी तैयार की गई, परन्तु कई कारणों से कार्य आगे न चला। प्रतीत होता है कि मुसलमान मेम्बरों के भय से कांग्रेस के अधिकारी अछूतोद्धार के कार्य को हाथ में लेने से घबराते थे। स्वामी जी के बहुत बार प्रेरणा करने पर भी जब कुछ फल न निकला तब स्वामी जी ने निराश होकर कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया, और स्वतन्त्र रूप से दलितोद्धार के कार्य में लग गये। दिल्ली की दलितोद्धार सभा ने आप की संरक्षकता में जो उपयोगी कार्य किया है, उस की जानने वालों ने शतमुख से प्रशंसा की है।

जेल में

१९२२ में सारा भारतवर्ष सिक्खों के सत्याग्रह के नाद से गूंज गया। अमृतसर में 'गुरु का वाग' पर अंग्रेजी सरकार अपने असली पाशविक रूप में और सिक्ख-जाति सच्चे क्षत्रिय-रूप में प्रकट हुई। निहत्थे अकाली वीरों पर लाठियों के क्रूर प्रहार का शब्द देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सुनाई दिया। स्वामी जो दिल्ली में थे। वहां भी वह शब्द पहुंचा। दूसरे की आपत्ति को देख रक्षार्थ कूद पड़ना स्वामी जी के स्वभाव में था। अकाली वीरों के दुःख में हिस्सेदार बनने के लिये आप अमृतसर पहुंचे और अकालतख्त के पास खड़े होकर सिक्ख जाति को यह सन्देश सुनाया कि आप

लोगों के धर्म-संग्राम में हिन्दू आप के साथ हैं। सरकार देर से ताक में बैठी थी। उसे अवसर हाथ लगा। १० सितम्बर १९२२ को आप वहीं पर गिरफ्तार कर लिये गये और कुछ दिनों तक मुकद्दमे का ढोंग बनाने के पीछे जेल में भेज दिये गये। आप को १७ महीने की सादी कैद की सजा मिली। परन्तु कुछ ही समय पीछे अकालियों के साथ सरकार ने नर्मी का व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। बहुत से कैदी छोड़े गये। पहले तो सरकार स्वामी जी को छोड़ने को तैयार न हुई परन्तु जब पंजाब के अखबारों ने शोर मचाया तब २६ सितम्बर को आप जेल से छोड़ दिये गये।

'शुद्धि सभा' की स्थापना

जेल से छूट कर कुछ दिनों तक स्वामी जी ने गुरुकुल कांगड़ी में विश्राम किया। प्रबन्ध से सम्बन्ध न रखते हुए भी अन्त तक स्वामी जी का आत्मिक घर और शांति का सदन गुरुकुल कांगड़ी ही था। १२ फरवरी को दिल्ली में सर हरिसिंह गौड़ के विवाह-सुधार-बिल के समर्थन में एक सभा हुई, जिस के आप सभापति बने। कई हजार की उपस्थिति में केवल १५ हाथ विरोध में उठे। शेष सबने अनुकूल राय दी।

उसी रात को दिल्ली से चल कर २३ फरवरी को स्वामी जी आगरा पहुंचे। आगरा में राजपूत सभा की से ओर मुसलमान बने हुए जाटों तथा गूजरों को बिरादरी में वापिस लेने के सम्बन्ध में विचार हो रहा रहा था। वे लोग नाम-मात्र के मुसलमान थे और 'मूले' तथा 'मलकाने' कहलाते थे। उन के रीति-रिवाज और वेश-भूषा सब हिन्दुओं के-सेथे। अभी तक नाम भी हिन्दुआने ही थे। राजपूत सभा देर से उन्हें अपनी बिरादरी में वापिस लेने का विचार कर रही थी। १३ फरवरी को राजपूत क्षत्रिय सभा की ओर से मूले-मलकानों को बिरादरी में वापिस लेने के संबन्ध में विचारार्थ बहुत से महानुभाव आगरा में निमन्त्रित किये गये थे। उन में से स्वामी जी भी

एक थे। बहुत से ऊहापोह और विचार के अनन्तर मूलों तथा मलकानों की शुद्धि के लिए हिन्दू-शुद्धि-सभा की स्थापना की गई, और स्वामी श्रद्धानन्द जी उसके सभापति बनाये गये। क्या सरकारी रिपोर्टों और क्या मुसलमान प्रचारकों के लिखे हुए वृत्तान्तों में—जहाँ देखिये—यही लिखा मिलेगा कि मूले तथा मलकाने नाम-मात्र के मुसलमान हैं। उन्हें बिरादरी में वापिस लेने का नाम शुद्धि रखना भी भूल है।

स्वामी जी शुद्धि-सभा के प्रधान बने हैं, यह घोषणा समाचार-पत्रों में होते ही मुसलमानों में एक तरह की आग लग गई। हिन्दू हर रोज मुसलमान बनें, यह तो एक साधारण बात थी, परन्तु मुसलमानों को हिन्दू बनाया जाय यह कैसे सहन किया जा सकता था। समाचार-पत्रों और सभाओं में एक तूफान मच गया और मुसलमान स्वामी जी के जानी दुश्मन हो गये। उस दिन से ले कर अन्त समय तक बराबर मुसलमान समाचार-पत्र और प्रचारक स्वामी जी को गाली देते और कोसते रहे, जिसका परिणाम यह हुआ कि अनपढ़ और साधारण मुसलमान उनके जानी दुश्मन हो गये।

उस समय से ले कर अन्त समय तक स्वामी जी शुद्धि-सभा के आत्मा बनकर रहे। कभी प्रधान, कभी उप प्रधान और कभी कार्य-कर्त्ता प्रधान की हैसियत से कार्य करते हुए वह सभा की उन्नति के लिए यत्नवान् रहे। हजारों मलकाने शुद्ध हो गये, हिन्दू-जाति की पाचन शक्ति बढ़ गई, एक प्रकार से मुर्दा हिन्दू जाति में जान पड़ गई। ज्यों-ज्यों हिन्दुओं में जागृति पैदा होती जातो थी, त्यों-त्यों मुसलमानों का स्वामी जी से द्वेष-भाव भी बढ़ता जाता था। धमकियों की चिट्ठियां तो प्रायः रोजाना ही आती रहती थीं।

'हिन्दू-सङ्गठन' के लिए दौरे

दलितोद्धार और शुद्धि के आन्दोलन में पड़ने पर स्वामी जी ने हिन्दू जाति की निर्बल दशा का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि

हिन्दुओं में आत्माभिमान, आत्म-विश्वास और जीवन-शक्ति की बड़ी कमी है। शरीर के एक अङ्ग से दूसरा अंग अलग हो रहा है। हिन्दू-जाति में धन है, बल है, परन्तु एकता नहीं है, संगठन नहीं है। तब आप ने हिन्दू-संगठन की आवश्यकता को और अधिक अनुभव किया। ९२३ के अगस्त मास के अन्त में बनारस में हिन्दू-महासभा का अधिवेशन था। उस से पूर्व स्वामी जी ने संयुक्तप्रांत उत्तर प्रदेश और बिहार का दौरा किया। वह दौरा लगभग एक मास तकरहा। इस एक मास में स्वामी जी ने १०० से अधिक व्याख्यान दिये। ३० स्थानों पर अभिनन्दन-पत्र लिये और दो दर्जन से अधिक हिन्दू सभायें स्थापित कीं। इस दौरे की समाप्ति हिन्दू-महासभा के अधिवेशन पर हुई। उस अधिवेशन की सफलता का अधिकतर श्रेय स्वामी जी को ही था। महासभा के अधिवेशन में स्वामी जी उप-सभापति चुने गये। इसके अनन्तर भी स्वामी जी ने हिन्दू-संगठन और अछूतोद्धार के लिये सयुक्तप्रांत, पंजाब, बिहार और मालावार आदि में अनेक बड़े-बड़े दौरे किये। यद्यपि इस समय से ले कर अन्त तक स्वामी जी किसी न किसी हैसियत से सभा के साथ सम्बद्ध रहे परन्तु समाज-सुधार सम्बन्धी मतभेद बराबर बना ही रहा। विधवाओं के पुनर्विवाह और अछूतों को गायत्री का उपदेश करने के सम्बन्ध में सनातन-धर्मावलम्बी हिन्दुओं के साथ स्वामी जी का मतभेद था। स्वामी जो इन दोनों सुधारों को हिन्दू-जाति के जीवन के लिये जरूरी समझते थे, परन्तु महासभा इतनी दूर तक जाने को तैयार नहीं थी। इस कारण स्वामी जी ने कई बार हिन्दू-महासभा से त्याग पत्र-भी दिया।

कन्या गुरुकुल की स्थापना

स्त्री-शिक्षा की ओर स्वामी जी का पहले से ही झुकाव था। जालन्धर के कन्या महाविद्यालय की स्थापना में आप का विशेष हाथ था। बालकों के लिये गुरुकुल बन जाने पर आप को बराबर

यह ध्यान रहा कि कन्याओं के लिये गुरुकुल की स्थापना की जाय। कई वर्ष पूर्व दिल्ली के दानवीर सेठ रघुमल जी से आपने कन्या गुरुकुल के लिए एक लाख रुपये की सहायता का वायदा लिया हुआ था। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के जब आप प्रधान थे, तब सभा ने कन्या गुरुकुल की स्थापना करने का निश्चय किया था। भूमि ले ली गई थी, और पाठविधि आदि का निर्णय भी हो रहा था। पीछे से सावदेशिक सभा से यह कार्य पंजाब की प्रतिनिधि सभा ने ले लिया। ९ नवम्बर १९२३ को दिल्ली की दरियागंज कोठी नं० ४ में कन्या गुरुकुल का प्रारम्भोत्सव हुआ। उत्सव श्री स्वामी जी के हाथों से ही प्रारम्भ कराया गया। कन्या गुरुकुल स्वामी जी के संकल्प और चिन्तन का ही फल था, इसलिये यह उचित ही था कि उन्हीं के हाथ से यह कार्य सम्पादित हो।

दयानन्द जन्म-शताब्दी मथुरा

१९२५ ई० के फरवरी मास में आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी मनाई जाने वाली थी। शताब्दी मनाने का विचार कई वर्षों से चल रहा था। जो सभा संगठित की गई थी, उस के प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। कुछ समय पीछे आप मद्रास, बंगाल आदि में शुद्धि सम्वन्धी दौरे पर चले गये। तब शताब्दी की कमेटी के कार्यकर्त्ता प्रधान म० नारायण स्वामी जी बनाये गये। बीच-बीच में स्वामी जी मथुरा आकर कार्य की देखभाल करते रहे। उत्सव से कुछ पूर्व आप मथुरा में जा बैठे। शताब्दी का समारोह अपूर्व रहा। वह केवल आर्य समाजियों का समारोह नहीं था, वह संपूर्ण हिन्दू-जाति का सामारोह था। श्रीयुत नारायण स्वामी जी के परिश्रम और स्वामी श्रद्धानन्द जी की कल्पना ने एक ऐसा अपूर्व धार्मिक मेला कर दिखाया जो हिन्दू-जाति को बीसियों वर्षों तक याद रहेगा।

एकता सम्मेलन

मालावार में मोपलाओं ने १९२१ में जो उपद्रव किया, और उस में

हिन्दू सहवासियों पर जो अत्याचार किये उस ने जातीय उपद्रवों का दौर-दौरा आरम्भ कर दिया। मुलतान, सहारनपुर, अजमेर, गुलबर्गा और कोहाट में एक-दूसरे के पीछे उपद्रव व दंगे होते गये। मुसलमानों के गुरुओं ने उन्हें उल्टी शिक्षा पढ़ाकर हिन्दुओं की शुद्धि का जवाब दंगों और फिसादों से देने के लिये प्रेरित किया। महात्मा गांधी, जो अपने आप को एकता का सबसे बड़ा वकील समझते थे, जातीय विद्वेष के प्रवाह को रोकने का यत्न करते रहे। महात्मा जी ने यथाशक्ति सब कुछ किया। उन्होंने 'यङ्ग इण्डिया' में कई लेख लिखे, जिनमें आर्यसमाज को दोषी ठहरा कर मुसलमानों के क्रोध को शान्त करने का यत्न किया। इस्लाम की शिक्षा को शान्तिपूर्ण और अहिंसक सिद्ध करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी किन्तु 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' मुसलमान जनता को जो खून चढ़ा वह अधिक-ही-अधिक गहरा होता गया। कोहाट पर वह सीमा की रेखा को पार कर गया। मुसलमानों के लिए अत्यन्त उदार महात्माजी का हृदय भी खिन्न हो उठा। कोहाट के समाचारों ने उन्हें कम्पित कर दिया। उन्होंने २१ दिन के उपवास का व्रत किया। इस समाचार ने देश में हाहाकार मचा दिया। महात्मा जी दिल्ली में थे। दिल्ली निवासियों पर उपवास के व्रत का अधिक असर पड़ा। हकीम अजमलखाँ, स्वामी श्रद्धानन्द और मौ० मुहम्मद अली की ओर से दिल्ली में 'एकता कान्फ्रेंस' का एक अधिवेशन बुलाया गया। अधिवेशन बड़ी धूमधाम से हुआ। पं० मोतीलाल जी ने सभापति पद को ग्रहण किया। तीन दिन तक उस कान्फ्रेन्स की कार्यवाही होती रही। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उन तीन दिनों में जिस धार्मिक उदारता, एकता और प्रेम का परिचय दिया, उस के सिक्के को विरोधियों ने भी माना। बम्बई के मि० नरीमन ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि इस सम्मेलन को जितनी सफलता (यद्यपि वह सफलता केवल शाब्दिक थी) प्राप्त हुई, उस का एक बड़ा कारण स्वामी जी की उदारता थी।

एक क्रियात्मक जीवन

इस संक्षिप्त विवरण में हम ने स्वामी जी के जीवन कीमुख्य-मुख्य घटनाओं की चर्चा की है। उन का संम्पूर्ण जीवन कर्मयोगमय था। १२ महीने २४ घंटे कमर कस कर तैयार रहते थे। यों तो उन्हें कई रोगों ने घेर रखा था। बवासीर का रोग पुराना था। जुकाम और खांसी का कष्ट प्रायः सताया करता था। लगभग ४० वर्ष तक हरनिया के रोग ने भी दबाये रखा। अन्तिम दिनों में बुढ़ापे का रोग 'ब्राइट्स-डिजीज' भी शरीर में घर कर गया था। इतने रोगों के शिकार होते हुए भी देखने में ७० वर्ष से अधिक आयु के नहीं मालूम होते थे। प्रतिदिन प्रातः काल ३ बजे उठ कर घण्टा-भर ध्यान में बैठते थे, फिर नित्य कर्म से निवृत्त होते थे। ७१ वर्ष की आयु तक उन्होंने व्यांयाम में कभी नागा नहीं किया। थोड़ा-बहुत व्यायाम नित्य करते थे! फिर ठण्डे जल से स्नान करते थे। शीतकाल में रात के रखे जल का प्रयोग करते थे। भोजन और शयन के नियमों का यथासंभव बड़ी कड़ाई से पालन करते थे। भोजन में न मिर्च होती थी, और न मसाला डाला जाता था। केवल नमक और हल्दी के प्रयोग से जो भोजन तैयार होता था, उसे आप बड़े प्रेम से खाते थे। रात को ९ बजे सो जाते थे, और सुबह तीन बजे खड़े होते थे। इसी नियम बद्ध और ब्रह्मचारी-जीवन का परिणाम था कि आप इतनी उमर में, अनेक रोगों से घिरे रहने पर भी देखने में हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते थे, लम्बी यात्रायें व दौरे कर सकते थे। एक दिन में तीन-तीन चार-चार व्याख्यान देते थे। इस वृत्तान्त में हम ने केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं की चर्चा की है। इन घटनाओं के मध्य में जो अवकाश-भाग है, वह यदि बीमारी में व्यतीत नहीं हुए तो प्रचार और कार्यों में व्यतीत हुए हैं। यदि जीवन के अन्त तक कमर कसी रख कर कर्य करना संभव है तो वह स्वामी जी के जीवन में प्रत्यक्ष हो गया।

शान्तिदेवी की शुद्धि और मुकद्दमा

२५ मार्च १९२६ को असगरी बेगम नाम की एक मुसलमान महिला अपने दो लड़कों और भतीजे के साथ दिल्ली स्टेशन पर उतरी। वह स्टेशन से उतर कर आर्यसमाज में गई। उस का नाम बदल कर शांति देवी रखा गया। उसके दोनों पुत्रों में से बड़ा ४ वर्ष का था उस का नाम धर्मपाल रखा गया। छोटे की आयु डेढ़ वर्ष के लगभग थी, वह अभी माता का दूध पीता था, उस का नाम अर्जुन रखा गया। भतीजे का नाम अमरसिंह रखा गया। शान्तिदेवी समाज मन्दिर से शुद्ध होकर 'वनिता विश्राम' में भेजी गई। इस आश्रम के मन्त्री डा० सुखदेव जी थे। डा० सुखदेव जी के साथ महात्मा मुंशीराम जी की पुत्री अमृतकला का विवाह हुआ था।

आश्रम में रहकर शांतिदेवी ने हिन्दी-संस्कृत तथा धर्म-ग्रन्थों को पढ़ना आरम्भ किया। ३ महीने इसी प्रकार व्यतीत हो गये। जून मास के अंत में असगरी बेगम के पिता लड़की का सुराग पा कर मौलवी ताज मुहम्मद खां, एक नवयुवक मुसलमान के साथ दिल्ली पहुंचे। कुछ दिन पीछे असगरी का भूतपूर्व पति अब्दुल हलीम भी पहुंच गया। मुसलमान नवयुवक और मौलवी ताजमुहम्मद खाँ ने मिलकर शांन्तिदेवी को फिर से इस्लाम में वापिस ले जाने की चेष्टा की। उन्होंने आकर स्वामी जी से और डा० सुखदेव जी से शान्तिदेवी से मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्हें खुली इजाजत दी गई कि वह जब चाहें तब मिलें और समझाने का यत्न करें। उनके बहुत यत्न करने पर भी शांतिदेवी ने इस्लाम में वापिस जाना मंजूर नहीं किया। इससे असगरी बेगम के सम्बन्धी बहुत रुष्ट हुए। रोष तो था असगरी बेगम की शुद्धि पर, परन्तु दिल्ली की इस्लामी अंजुमनों ने भड़का कर उन्हें स्वामी जी पर तथा अन्य हिन्दू कार्यकर्त्ताओं पर इस्तगासा करने के लिये तैयार कर दिया। असगरी बेगम के पति अब्दुलहलीम ने जून के अन्त में श्रीमती शांतिदेवी के अतिरिक्त स्वामी

श्रद्धानन्द जी, डा० सुखदेव जी, ला० देशबन्धु गुप्त, प्रो० इन्द्र, ला० गणपतराय तथा मन्त्री आर्यसमाज कराची पर नालिश कर दी कि जहाँ शांतिदेवी ने उस के नाबालिग बच्चों को भगाया है वहाँ शेष सब ने उनके भगाने में सहायता की है। मुसलमानों की ओर से प्रायः यह आक्षेप किया जाता था कि आर्यसमाजी औरतों और बच्चों का अगवा करते हैं। इस मुकद्दमे ने एक प्रकार से इस आक्षेप का समाधान कर दिया। मुकद्दमा खूब धूम-धाम से चला। मुसलमानों की सब अंजुमनों की शक्तियां लगाई गईं, लाहौर से बैरिस्टर बुलाये गये। मि० लुइस ने बड़े धैर्य से इस्तगासे की गवाही सुनी, और अन्त में सब अभियुक्तों के बयान लेकर फैसला किया। मजिस्ट्रेट ने सभी अभियुक्तों को सर्वथा निर्दोष ठहराया। आर्यसमाज के कार्य की जैसी अच्छी सफाई इस मुकद्दमे ने पेश की, वैसी अच्छी शायद सैकड़ों किताबों, व्याख्यानों से न होती।

मुकद्दमे ने स्पष्ट कर दिया कि असगरी बेगम को कराची से लाने तथा शुद्ध कर के शान्तिदेवी बनाने में स्वामी जी का या किसी अन्य अभियुक्त का कोई हाथ नहीं था। यह भी साफ हो गया कि शुद्ध करने के अनन्तर श्रीमती शांतिदेवी को किसी बन्धन में नहीं रखा गया। वह आर्यसमाज में रहने या इस्लाम में वापिस जाने में बिलकुल स्वतन्त्र थी। यह ठीक है कि वैदिक धर्म में आकर शांतिदेवी ने स्वामी जी को अपना धर्मपिता मान लिया था, परन्तु यह कोई जुर्म नहीं था। फैसले ने सिद्ध कर दिया कि शांतिदेवी के मामले में स्वामी जी का तथा अन्य आर्य पुरुषों का किसी प्रकार कोई हाथ न था। परन्तु इस मुकद्दमे को निमित्त बना कर दिल्ली की मुसलमान अंजुमनों, मुसलमान अखबारों और विशेषतया ख्वाजा हसन निजामी के अखबारों ने खूब शोर मचाया और मुसलमान जनता को स्वामी जी के विरुद्ध भड़काने का यत्न किया। इस निर्मूल आंदोलन ने उस आग को जो मुसलमानों के जाहिल हिस्से में धीरे-धीरे सुलग रही थी, जोर से भड़का दिया।

रोग तथा बलिदान

दिसम्बर के आरम्भ में स्वामी जी बनारस के दौरे से लौटे। वहां आप चुनाव में सेठ घनश्यामदास बिड़ला की मदद करने गये थे। वृद्ध और थका हुआ शरीर था, सर्दी का मौसम था, एक-एक दिन में कई-कई जगह बोलना पड़ा, देहात में मोटर का सफर करना पड़ा, जिस से गर्द और सर्दी ने फेफड़े और गले पर असर किया। आप लौटे तब आधे रोगी थे। खांसी और जुकाम की शिकायत थी।

बनारस जाने से पहले ही स्वामी जी का विचार किसी एकान्त स्थान पर जाकर विश्राम करने का था। आप गुरुकुल कुरुक्षेत्र में जा कर कुछ समय तक रहना चाहते थे। गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता को पत्र भी लिख चुके थे। बनारस से कई तार आने पर आप को वहां जाने के लिये बाधित होना पड़ा था। बनारस से लौट कर विश्राम करने की आवश्यकता अधिक बढ़ गई। आपने फिर गुरुकुल कुरुक्षेत्र जाने का निश्चय किया। आप की मेज की दराज में एक कागज मिला है, जिस पर गोहाटी जाने का प्रोग्राम भी लिखा हुआ है। यदि बीमार न होते तो संभव है आप गोहाटी की तरफ रवाना हो जाते।

कुरुक्षेत्र जाने के लिये ८ दिसम्बर की तारीख नियत की गई थी। तीन दिन पूर्व गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के मुख्याधिष्ठाता स्वामी जी की सेवा में हाजिर हुए और प्रार्थना की कि गुरुकुल कुरुक्षेत्र जाने से पूर्व एक-दो रोज के लिए हमारे स्थान को भी पवित्र कर आइये। अपनी तबियत के अनुसार स्वामी जी आग्रह को न टाल सके। स्वीकृति दे दी। दूसरे दिन प्रातःकाल मोटर द्वारा आप गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के लिये रवाना हुए। प्रातःकाल का समय था। सर्दी ज़ोर की पड़ रही थी। हवा झक्कड़ की तरह चल रही थी। १२ मील तक मोटर की हवा लगती रही। फेफड़ों और गले पर पहले ही असर हो चुका था; इस सर्दी ने उन पर पूरा अधिकार जमा

लिया। गुरुकुल पहुंचते ही तबियत बिगड़ने लगी। भोजन के पीछे ज्वर-सा मालूम होने लगा और उल्टियाँ आने लगीं। धर्मसिंह सेवक साथ था। शाम को गाड़ी से धर्मसिंह के साथ दिल्ली वापिस आ गये। सारे रास्ते में बुखार की घबराहट रही।

दिल्ली पहुंचकर अपने पुराने सेवक डाक्टर सुखदेव जी को याद किया। डाक्टर जी ने शरीर की परीक्षा करके बतलाया कि ब्रांको निमोनिया का आक्रमण है। स्वामी जी को डाक्टर सुखदेव से उतर कर यदि किसी के इलाज में श्रद्धा थी तो वह डाक्टर अन्सारी थे। अथवा यों कहना चाहिये कि सुखदेव जी की सेवा पर उन्हें जितना विश्वास था, उतना ही विश्वास उन्हें डाक्टर अन्सारी की दवा पर था। अगले दिन डाक्टर अन्सारी को बुलाया गया। डाक्टर जी खबर पाते ही भागे हुए आये और बड़े प्रेम से स्वामी जी की शारीरिक दशा को देखा। स्वामी जी कहा करते थे कि बीमार को जिस मुहब्बत और धैर्य से डा० अन्सारी देखते हैं, डाक्टरों में प्रायः उस का अभाव है। डा० अन्सारी जब भी आते तब आध घण्टा पौन घण्टा बैठकर जाते। उन की बातों से और देख-भाल से कुछ ऐसी तसल्ली हो जाती कि आधा रोग दूर हो जाता।

तीन दिन तक डा० अन्सारी इलाज करते रहे। चौथे दिन उन्हें रामपुर जाना पड़ा। चार दिन तक रामपुर रहे। इन चार दिनों में स्वामी जी की तबियत प्रतिदिन बिगड़ती गई। कई इलाज किये परन्तु किसी से सन्तोषजनक लाभ न हुआ। यहां तक कि चौथे दिन स्वामी जी ने अपने सेवकों को कह दिया कि अब शरीर में और अधिक ज़हर डालने से कोई लाभ नहीं। यदि शरीर को नीरोग होना होगा, तो दवा के बिना ही हो जायेगा। बुखार १०३° तक पहुंच जाता था, खांसी जोर से उठती थी, और कमजोरी बढ़ती जा रही थी। स्वामी जी बीमारी में भी यह पसन्द नहीं करते थे कि लेटे ही लेटे पानी पियें, या चारपाई से उतरे बिना

मल-मूत्र विसर्जन करें। बुखार बढ़ने पर डाक्टरों ने आप को लेटे रहने के लिये बाधित किया, इस से आप बहुत ही खिन्न थे। आप अनुभव करते थे कि दूसरे के हाथ से पानी पीने की अपेक्षा न पीना अच्छा है।

एक तरह से आप आदर्श रोगी थे। डाक्टर की आज्ञा को मानना अपना धर्म समझते थे। अगर सेवकों में से कोई अपने कर्तव्य को भूल जाता तो स्वामी जी याद करा देते। ठीक बारह बजे दवा देने का समय था। १२ बज कर एक मिनट हुआ कि स्वामी जी ने सेवक को पुकारा और दवा देने की बाबत याद कराया। कमरा गन्दा नहीं रहने पाता था। समय पर टैम्परेचर दिखलवा लेते और कागज पर लिखवा लेते थे।

इस बीमारी में स्वामी जी की सब से अधिक सेवा तीन महानुभावों ने की। डा० सुखदेव जी, डा० अन्सारी के आदेश के अनुसार औषध प्रयोग करते थे और स्नातक धर्मपाल और धर्मसिंह सेवक रात-दिन सेवा में हाजिर रहते थे। आने वाले आश्चर्यचकित होकर सोचते थे कि ये दोनों सेवक कभी सोते हैं या नहीं। माता या बेटी भी वह सेवा क्या करेगी जो इन दोनों ने की।

चार दिन की अनुपस्थिति के पीछे डा० अन्सारी रामपुर से लौट आये। आप के आने का समाचार उसी समय स्वामी जी तक पहुंचाया गया। समाचार ने आप पर अद्‌भुत असर किया। श्रद्धा और विश्वास पर ही आप जीते थे। यह सुनते ही कि डा० अन्सारी आ गये हैं, स्वामी जी सावधान हो गये और नीरोग होने की आशा उत्पन्न होने लगी। डा० अन्सारी ने आकर देख-भाल की और दवा में कुछ परिवर्तन किया। शीघ्र ही लाभ दिखाई देने लगा। दूसरे दिन प्रातःकाल बुखार बहुत कम हो गया और तीसरे दिन प्रातःकाल बुखार नार्मल था। दोपहर का बुखार भी धीरे-धीरे कम होने लगा। डाक्टरों

ने यह सम्मति प्रकाशित कर दी कि अब रोग का भयंकर रूप जाता रहा, कुछ दिन में स्वामी जी नीरोग हो जायेंगे।

बुखार के उतरने के साथ-साथ स्वामी जी में एक अद्भुत परिवर्तन दिखाई देने लगा। जब तक अधिक रोगी थे, समझते थे कि रोग हट जायेगा परन्तु जब नीरोग होने लगे तब दिल की अवस्था दूसरी हो गई। स्वामी जी को भान हो रहा था कि अन्तिम समय निकट है। जिस रोज पहले-पहल प्रातःकाल बुखार उतरा, स्वामी जी ने ब्राह्ममुहूर्त में अपने मन्त्री पं० धर्मपाल जी को भेज कर पं० इन्द्र जी, ला० देशबन्धु गुप्त, स्वामी रामानन्द और डा० सुखदेव जी को बुलाया और कहा कि मैंने तुम लोगों को वसीयत लिखने के लिए बुलाया है। मैं चाहता हूं कि तुम लोगों के सामने वसीयत लिख दूं। सब ने आपस में विचार किया। स्वामीजी की दृष्टि भविष्य को देख रही थी, जबकि सब लोग केवल वर्तमान को देख रहे थे। सबने सोचा कि इस समय वसीयत लिखने का स्वामी जी पर यह असर पड़ सकता है कि सब लोग रोग को असाध्य समझने लगे हैं। स्वामी जी से निवेदन किया गया कि 'महाराज, डाक्टर जी कहते हैं कि अब कोई डर नहीं है। आप की तबियत कुछ दिनों में अच्छी हो जाएगी, उस समय आप जैसी आज्ञा करेंगे वैसा होता रहेगा। जल्दी क्या है।' स्वामी जी ने निम्नलिखित उत्तर दिया, "भाई डाक्टर जी औषध से राजस-बल को बढ़ा देंगे, परन्तु अन्दर से यह आवाज नहीं उठती कि मैं उठ खड़ा हो सकूँ। वसीयत लिख लें तो अच्छा है।"

सब लोगों ने और कोई चारा न देख कर बात दोपहर पर टाल दी।

जब दोपहर के समय पं० इन्द्र जी दर्शनों को गये तो स्वामी जी ने उन्हें पास बुला कर बिठाया और थोड़ा-सा रुपया बैंक में पड़ा हुआ था, उसके बंटवारे के सम्बन्ध में निर्देश कर के अन्त में कहा—

'इस शरीर का कुछ ठिकाना नहीं, मैं शायद ही उठूं। तुम एक

काम ज़रूर करना। मेरे कमरे में आर्यसमाज के इतिहास की सामग्री पड़ी है, उसे संभाल लेना और समय निकालकर इतिहास ज़रूर लिख डालना। एक बात और कहता हूं। इतिहास के लिखने में मुझे माफ न करना। मैंने बड़ी-बड़ी भूलें की हैं। तुम्हें तो मालूम है कि मैं क्या करना चाहता था और किधर पड़ गया।' इतना कहते-कहते स्वामी जी का दिल भर आया और चुप हो गये। अधिक न बोल सके और आंखें बन्द कर लीं।

उन्हीं दिनों डा० सुखदेव जी ने हंसकर कहा कि स्वामी जो आप की तबियत अच्छी हो रही है, थोड़े दिनों में आप उठ खड़े होंगे। दो दिन में आप को रोटी दे दूँगा और आप बैठने लगेंगे।

स्वामी जी ने उत्तर दिया 'डाक्टर जी, आप लोग तो ऐसा ही कहते हैं, परन्तु मेरा शरीर तो अब सेवा के योग्य नहीं रहा। इस रोगी शरीर से देश का कोई कल्याण न हो सकेगा। अब तो हृदय में एक ही इच्छा है कि दूसरा जन्म लेकर नये शरीर से इस जीवन के कार्य को पूरा करूं।'

शहादत से दो दिन पूर्व व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालु जी शर्मा स्वामी जी की मिजाजपुर्सी को आए। स्वामी जी के लिए उठना कठिन था, तो भी आधे उठ कर हाथ मिलाया और बात-चीत होने लगी। व्याख्यान वाचस्पति जी ने मुस्करा कर कहा कि 'स्वामी जी, मुझसे मालवीय जी एक वर्ष बड़े हैं और आप उनसे एक वर्ष बड़े हैं। अभी हम लोगों को बहुत-सा काम करना है। आप इतनी जल्दी मोक्ष की तैयारी क्यों करने लगे थे? अब तो आप राज़ी हो जायेंगे।'

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'पंडित जी, इस कलियुग में मैं मोक्ष की इच्छा नहीं रखता। मैं तो केवल इतना चाहता हूं कि चोला बदल कर दूसरा शरीर धारण करूं। अब इस शरीर से सेवा नहीं हो सकेगी। इच्छा है कि फिर इसी भारतवर्ष में उत्पन्न हो कर देश की सेवा करूं।'

देहान्त से पहली सायंकाल को स्वामी जी के पुत्र-सम ला० देशबन्धु गुप्त दर्शनों को आए। उस समय स्वामी जी की धर्म-पुत्री शान्तिदेवी भी वहीं थीं। देशबन्धु जी ने पूछा कि 'डाक्टर लोग कहते हैं कि आप की तबियत अच्छी हो रही है, क्या आप को भी ऐसा अनुभव होता है ?' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'डाक्टर लोग चाहे कुछ कहें, पर मुझे तो आत्मा का यही शब्द सुनाई देता है कि अब यह शरीर काम का नहीं रहा। मैं इस समय जाने के लिए बिलकुल तैयार हूं।'

२३ दिसम्बर की दोपहर को गोली लगने से कुछ घण्टे पूर्व स्वामी चिदानन्द जी राजा सर रामपालसिंह का एक तार लेकर आए, जिस में स्वामी जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा था। स्वामी चिदानन्द जी ने प्रश्न किया कि मैं क्या उत्तर दूं ? स्वामी जी ने उत्तर लिखवा दिया। उत्तर की अंतिम पंक्तियाँ इस आशय की थीं कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर के शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं।

इस प्रकार स्वामी जी चार-पाँच दिन तक अनुभव करते रहे कि उन का अन्त समय समीप है। लोगों की छोटी दृष्टियां वहाँ न पहुंच सकीं, जहाँ तपस्वी की अन्तर्दृष्टि पहुंच चुकी थी। उन्हें बुलावा आ रहा था। वह उस समय के लिए तैयार थे। सब लोग अपनी छोटी बुद्धियों से यही सोचा करते थे कि स्वामी जी इतने आशावादी होते हुए भी इस समय निराशा की बातें क्यों कर रहे हैं !

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति दोपहर के समय प्रतिदिन स्वामी जी के दर्शनों को जाया करते थे। उस दिन जब डेढ़ बजे के लगभग ऊपर गये तो स्वामी जी सो रहे थे। चारपाई के पास ही दरी पर धर्मसिंह सो रहा था, और रात की सेवा से थके स्नातक धर्मपाल जी पास के कमरे में सोये पड़े थे। घर में सब सोये पड़े थे। यह देखकर वे आश्चर्यान्वित-से हुए, परन्तु यह समझ कर कि किसी को नींद से

उठाना अच्छा नहीं, नीचे उतर गए, और एक लड़के को जो स्वामी जी के पास के कमरे में रहता था और ईसाई से आर्यसमाजी बना था ऊपर भेज दिया कि स्थान अरक्षित नर हे। दिल में यही सोचा होगा कि फिर शाम को आकर दर्शन करेंगे।

लगभग ढाई बजे डा० सुखदेव जी के अतिरिक्त कन्या गुरुकुल की आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ, स्वामी जी के अनन्य भक्त ला० जमनादास तथा कई अन्य महानुभाव दर्शनों को आ बैठे और लगभग पौने चार बजे तक बैठे रहे। वह स्वामी जी के निवृत्त होने का समय था। स्वामी जी ने सब लोगों से कहा कि आप लोग अब जाइये और केवल सेवक धर्मसिंह रह जाए। सब लोग इशारा समझ गए और उठ कर नीचे चले गए। धर्मसिंह ने आकर कमोड रख दी। स्वामी जी शौच गये और हाथ मुंह धो शुद्ध और सावधान हो कर मसनद के सहारे मानो बलिदान का अमृत पीने के लिये तैयार हो कर बैठ गये।

धर्मसिंह कमोड को उठा कर पास की कोठरी में रख आया और हाथ धोने के लिए बाहर गया। इतने में सीढ़ियों पर एक मुसलमान दिखाई दिया। स्वामी जी के पास डाक्टर ने आना-जाना बन्द कर दिया था। सेवक ने उसे जा कर रोक दिया। वह कहने लगा कि स्वामी जी के दर्शन करूंगा। नौकर रोकता रहा पर स्वामी जी ने आवाज सुन ली और सेवक से कहा 'कौन है, अन्दर आने दो'। सेवक ने मुसलमान को अन्दर बुला लिया। अन्दर आकर उसने स्वामी जी से कहा कि 'स्वामी जी, मैं आपसे इस्लाम के मुतल्लिक कुछ गुफ्तगू करना चाहता हूं।' स्वामी जी ने कहा कि 'भाई, मैं बीमार हूं। तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊंगा तो बात-चीत करूंगा।' इस पर उसने पानी माँगा। स्वामी जी ने सेवक से कहा 'पानी पिला दो'। इस पर धर्मसिंह उस मुसलमान के साथ बाहर चला गया और पानी पिलाया। पानी पी कर वह मुसलमान फिर कमरे के अन्दर तेजी से आ गया।

उसने अन्दर आते ही पिस्तौल निकाल कर स्वामी जी पर फायर किया। स्वामी जी मसनद के सहारे बैठे हुए थे। पहली गोली स्वामी जी की छाती में जा लगी। प्रतीत होता है कि वह फेफड़ों में जाकर लगी, क्योंकि उसी समय स्वामी जी की आँखें बन्द हो गईं। हत्यारे ने दूसरी गोली फिर छोड़ी। दोनों गोलियाँ आँख झपकने में चल गईं। इतने में धर्मसिंह सेवक ने लपक कर हत्यारे को पकड़ने का यत्न किया। हत्यारे ने फिर स्वामी जी पर तीसरा फायर किया। यह देख धर्मसिंह ने, जान की ममता छोड़, आगे से आकर कातिल के हाथ से पिस्तौल छीनने की चेष्टा की। हत्यारे ने एक फायर धर्मसिंह पर भी कर दिया। गोली धर्मसिंह की टाँग में लगी। वह बेचारा गोली खा कर लड़खड़ा गया और कातिल भाग निकलता कि उसी समय स्वामी जी के प्राइवेट सेक्रेटरी स्नातक धर्मपाल ने झपट कर हत्यारे के दोनों हाथ पकड़ लिये और अड़ङ्गा डाल कर उसे गिरा दिया। धर्मपाल जी ने बड़ी हिम्मत का काम किया कि रिवाल्वर के साथ उस हत्यारे को लगभग आध घण्टा तक दबाये रखा।

बेचारा धर्मसिंह उसी घायल अवस्था में लुढ़कता-पुढ़कता बाहर गया, और चारों ओर आवाजें दीं। इस पर स्वामी चिदानन्द जी भागे हुए आये। थोड़ी देर में मास्टर रमन जी, डा० सुखदेव जी, लाला बलराम, तथा अन्य बहुत से लोग पहुंच गये। दुर्घटना की खबर शहर-भर में हवा की तरह फैल गई! स्वामी जी के कमरे के सामने हजारों की भीड़ इकट्ठी हो गई। थोड़ी देर में डा० अन्सारी तथा डा० अब्दुर्रहमान आ गये। उन से पूर्व ही डा० चिमनलाल किकानी भी आकर स्वामी जी की परीक्षा कर चुके थे। डा० अन्सारी ने खूब अच्छी तरह परीक्षा करके सूचना दे दी कि स्वामी जी का शरीर ठण्डा हो चुका है।

४ बजे गोली चली थी। लगभग साढ़े चार बजे सरदार चेतसिंह कुछ सिपाहियों के साथ मौके पर पहुंचे। उन्होंने पहला काम यह

किया कि अपना रिवाल्वर मुल्जिम के सामने तान कर पिस्तौल बरामद की और धर्मपाल जी से उसे छुड़वा कर सिपाहियों के सुपुर्द किया। थोड़ी देर में सीनियर सुपरिंटैण्डेण्ट पुलिस मि० आई० मार्गन तथा शेख नज़रुलहक भी आ पहुंचे और पुलिस की तहकीकात शुरू हो गई।

इस तरह तपस्वी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने धर्म पर अपना शरीर बलि चढ़ा दिया। वह जैसा अन्त चाहते थे, परमात्मा ने वह उन्हें दे दिया। भाग्य का चक्र यह है कि एक मुसलमान ने उन्हें मौत के मुंह से बचाया और दूसरे ने तमंचे के घाट उतार दिया। परमात्मा की अद्भुत लीला ऐसे ही रूपों में विचित्र ढंग से अपने आप को प्रकट किया करती है। डा० अन्सारी और अब्दुलरशीद मनुष्य जाति के रोशन और स्याह पहलुओं के नमूने हैं। धार्मिक संस्थायें, मनोविज्ञान के सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले विद्यार्थी तथा मनुष्य-जाति की सुधारक आर्यसमाज आदि संस्थायें इन दोनों प्रकार के दृष्टान्तों से उपदेश ग्रहण किया करेंगी।

●

जीवन का मूल मन्त्र—श्रद्धा

मेरे अन्तःकरण में निराशा की लहर जब कभी उठती है, उसी समय श्रद्धासागर में विलीन हो जाती है। मेरा जीवन आशातीत व्यतीत हुआ है। इस लिए जब तक दम में दम है तब तक मनुष्य को बेदम नहीं होना चाहिए, यह मेरा सिद्धान्त है।

—श्रद्धानन्द संन्यासी

कल्याण मार्ग के पथिक की भूमिका से

●

अमर हुतात्मा के जीवन की संक्षिप्त झांकी

वंश तथा पिता—श्री नानकचन्द्र जी क्षत्रिय वंश। नाम—मुंशीराम।

जन्म— तलवन ग्राम, जिला जालन्धर (पंजाब)	फरवरी १८५६
विद्यारम्भ (बनारस)	ईसवी सन् १८६६
धर्म विरोधी भाव	१८७५
ऋषि दयानन्द का सत्संग (बांस बरेली)	१८७९
आर्य समाज में प्रवेश (लाहौर)	१८८४
वकालत परीक्षा पास की	१८८७
प्रथम पुत्र हरिश्चन्द्र का जन्म	१८८७
धर्मप्रचार की धुन एवं कांग्रेस से सर्व प्रथम सम्बन्ध	१८८८
द्वितीय पुत्र इन्द्र का जन्म	१८८९
'सद्धर्म प्रचारक' का प्रकाशन	१८९०
धर्मपत्नी का देहान्त	१८९१
आर्य प्रति निधि सभा पंजाब के प्रधान निर्वाचित	१८९२
गुरुकुल खोलने का संकल्प	१८९८
गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना	२ मार्च १९०२
सार्वदेशिक सभा के प्रधान निर्वाचित	१९०९
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति (भागलपुर)	१९०९
संन्यासाश्रम में प्रवेश (नाम श्रद्धानन्द)	१२ अप्रैल १९१७
गढ़वाल के दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा	१९१८
राजनीति में सक्रिय भाग	१९१८
अमृतसर कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष	१९१९

पुन: गुरुकुल में (दो वर्ष)	११ फरवरी १९२०
श्रद्धा का प्रकाशन (१-३/४ वर्ष)	१९२०
असहयोग आंन्दोलन में	१९२१-२२
शुद्धि तथा दलितोद्धार सभा की स्थापना	फरवरी १९२३
हिन्दू-संगठन	१९२३
दक्षिण भारत में अस्पृश्यता निवारण	१९२४
दयानन्द जन्म शताब्दी का नेतृत्व	मार्च १९२५
लिबरेटर का प्रकाशन	अप्रैल १९२६
बलिदान	२३ दिसम्बर १९२६

●

उठो ! चेतो !!

जगत् पिता तुम्हारे अन्दर विराजमान हैं। उन की अनन्त शक्ति अपने अनन्त बल से तुम्हारी आत्मा को प्रकाश देने के लिए तैयार है। उस की प्राप्ति के साधन भी तुम्हारे अन्दर ही उपस्थित हैं। फिर क्यों अज्ञान सागर में डूबे हुए हम सब इधर हाथ-पैर मार रहे हैं ? उठो ! चेतो !! अमूल्य समय व्यर्थ जा रहा है।

—स्वामी श्रद्धानन्द

धर्मोपदेश भाग ३, पृष्ठ ५६।

जिसने कन्याओं की सुशिक्षा के लिए

जालन्धर में

आर्य कन्या महाविद्यालय

की स्थापना की

और

बेसहारा देवियों के लिए दिल्ली में

वनिता विश्राम आश्रम

स्थापित किया।

नारी जाति के उस महान उपकारक

स्वामी श्रद्धानन्द की

बलिदान अर्धशताब्दी

के अवसर पर हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि

आर्य स्त्री समाज, दीवान हाल, दिल्ली

स्वामी जी का बलिदान

—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

□

पिताजी निमोनिया के भयंकर आक्रमण से निकल चुके थे। अभी इलाज जारी था, और निर्बलता बहुत अधिक थी, परन्तु रोग का सिर कट चुका था।

मैं नित्य नियम के अनुसार दोपहर बाद बलिदान-भवन गया। अर्जुन कार्यालय, जहाँ मैं रहता था, बलिदान-भवन से बहुत दूर नहीं था, अधिक से अधिक चार मिनट का पैदल रास्ता होगा। पिताजी की तबियत अच्छी थी। उस समय कुछ अन्य महानुभाव भी वहाँ बैठे थे। पिताजी को स्वास्थ्य लाभ करते देखकर सभी प्रसन्न थे। पिताजी ने सारी बीमारी का बड़ी धीरता से सामना किया, परन्तु एक बात इस बीमारी में उनकी जिह्वा पर रही। वे बार बार कहते थे, कि अब यह शरीर सेवा करने के योग्य नहीं रहा। अब तो एक ही इच्छा है कि अगले जन्म में ऐसा शरीर प्राप्त करूं कि जो धर्म की सेवा के काम आ सके। ऐसे ही भाव उस दिन भी पिताजी ने प्रकट किये। इस पर हम सब ने निवेदन किया कि अब तो कोई खतरे की बात नहीं है। डा० अन्सारी ने भी कह दिया

है कि रोग जा चुका है, कुछ ही दिनों में आप सर्वथा स्वस्थ हो जायेंगे। पिताजी ने मुस्कराकर जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था कि होगा तो वही जो भगवान् चाहेंगे, मैं तो केवल अपनी इच्छा प्रकट कर रहा हूं।

थोड़ी देर तक बातचीत करने के पश्चात् हम लोग उठ गये, क्योंकि पिता जी के नित्य कर्म से निवृत्त होने का समय हो गया था। केवल उनका सेवक धर्मसिंह उनके पास रहता था। उसने चारपाई के पास कमोड रख दिया, पिताजी स्वयं उठ कर शौचादि से निवृत्त हुए, और फिर चारपाई पर लेट गये। हम लोग बलिदान-भवन के दूसरे हिस्से में थोड़ी ही देर बातचीत करके अपने-अपने स्थानों को चले गये।

मैं घर आकर चरपाई पर बैठा ही था कि बच्चा भागता हुआ आया और उसने घबराये हुए स्वर में कहा—दादा जी को किसी ने गोली मार दी। घर के सब लोगों ने अचम्भे और अविश्वास से उसकी बात को सुना, क्योंकि मैं उन्हें पिताजी के स्वास्थ्य की सन्तोषजनक उन्नति होने के समाचार सुना रहा था। यह समझकर कि बच्चे ने बात समझने में भूल की है, मैंने उससे पूछा—'तूने यह किससे सुना' उसने उत्तर दिया—'आप पूछ लीजिये'। सड़क पर जीवनलाल जी बहुत ही घबराई अवाज में मुझे पुकार रहे थे। मुझे देख कर वे बोले—स्वामी जी को किसी ने गोली मार दी।

मैंने पूछा—गोली मारने वाला पकड़ा गया या नहीं? जीवनलाल जी गोली की अवाज सुनकर सड़क पर ऐसी खबर देने के लिए भाग आये थे, उन्होंने उत्तर दिया, 'यह तो पता नहीं शायद भाग गया हो।'

समाचार सुनकर मेरे पाँव तले से जमीन निकल गयी। परन्तु समाचार के मानने और समझने में देर नहीं लगी। ऐसी आशंका तो

कुछ दिनों से हो ही रही थी। इतने में घर के और लोग आगे छज्जे पर पहुंच गये, और पूछने लगे कि क्या बात है। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया—और यह कहकर कि 'मैं स्वयं देख कर आता हूँ क्या बात है।' नंगे पाँव सीढ़ियों से उतर गया। पीछे, घर के अन्य लोग—मेरी पत्नी, और सभी चल पड़े।

मैं भागता हुआ भवन के नीचे पहुंचा तो देखा कि कुछ आदमी इकट्ठे हो गये हैं, और दो चार ऊपर भी जा चुके हैं। मुझे देखकर सभी तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे, पर मैं किसी का भी उत्तर दिये बिना ही ऊपर चढ़ गया। वहाँ जाकर अन्दर घुसते ही मेरी पहली नजर पिताजी की चारपाई पर पड़ी। पिताजी की आंखें बन्द थीं, मानो सुखपूर्वक सोये हों। सामने भगवे कुर्ते पर रक्त दिखाई दे रहा था, जो असली घटना की सूचना दे रहा था, अन्यथा पिता जी को देख कर एक दम यह अनुमान नहीं लग सकता था कि वे सजीव नहीं हैं।

दूसरी नजर सेवक धर्मसिंह पर पड़ी। वह कमरे के मध्य में जाँघ को हाथ से दबाये पड़ा था। उसके चारों ओर खून फैला हुआ था। मैंने पूछा—'धर्मसिंह तुम्हारे भी गोली लगी है?

धर्मसिंह ने उत्तर दिया—'हाँ, पंडित जी, मेरे गोली लगी है। पर आप मेरी चिन्ता न करो, स्वामी जी को कई गोलियाँ लगी हैं, उन्हें सम्भालिये।' मैं तब तक पलंग के पास पहुंच चुका था। मैंने पिताजी की कलाई और माथे पर हाथ रखा, तो उसे बिल्कुल ठण्डा पाया। उसी समय मेरी दृष्टि पलंग के पीछे कमरे के कोने में जमीन पर औंधे मुंह लेटे हुए स्नातक धर्मपाल जी पर पड़ी। मैंने पूछा—

'धर्मपाल जी, क्या आप के भी गोली लगी है?

उन्होंने उत्तर दिया—

'मैंने गोली मारने वाले को दबा रखा है।'

मैंने घबरा कर पूछा—

'क्या सहायता के लिए आऊँ ?'

उन का उत्तर था—

'आप इस की चिन्ता न करें, इसे मैं नहीं छोड़ूगा। आप स्वामी जी को संभालिये।'

उस परिस्थिति में मेरा दिमाग कैसे ठिकाने रहा, मुझे इसी बात पर आश्चर्य है। इस समय बहुत से और महानुभाव भो वहाँ पहुंच चुके थे। वे भी विचार में भाग ले रहे थे। पहला काम यह किया गया कि डा० अन्सारी को टेलीफोन द्वारा बुलाया गया और दूसरा काम यह हुआ कि कोतवाली में दुर्घटना की सूचना दी गई।

यह प्रबन्ध हो ही रहा था कि कमरे के दरवाजे पर हल्ला मच गया। मैं भाग कर दरवाजे पर गया तो देखता क्या हूं कि हमारा स्वयंसेवक राजाराम हाथ में लम्बा चाकू लिये अन्दर घुसने की चेष्टा कर रहा है, और उसे बा० धनीराम जी (मेरे बहनोई) दोनों हाथों से पकड़ कर रोक रहे हैं। कुछ लोग कह रहे थे, इसे अन्दर जाने दो, और कुछ लोग उसे शान्त कर रहे थे। पूछने पर राजाराम ने कहा—मैं उस पापी को मार छोड़ूगा, मुझे मत रोको, नहीं तो एक जगह कई खून हो जायेंगे। मैंने जा कर राजाराम का चाकू-वाला हाथ पकड़ लिया। वह मुझे देख कर चिल्लाया—पंडित जी, आप भी मुझे रोक रहे हैं। हमारे जीते जी उस ने स्वामी जी के गोली मार दी—हम उसे अभी मारकर छोड़ेगे।,

मैंने उसे समझाया कि यदि तुम उसे अभी मार दोगे तो इसका कोई प्रमाण न रहेगा कि वह हत्यारा है, और संसार पर सचाई प्रकट न होगी। यह समय शांत रहने का है, घबराने का नहीं। यह नहीं कि हमारे जोश के कारण पापी का पाप हमारे ही सिर लगा दिया जाय।

राजाराम खूब गठे हुए शरीर का, लम्बा चौड़ा नौजवान था। उस के चेहरे से बहादुरी टपकती थी। वह ट्राम्वे के दफ्तर में चौकी-

दारी करता था, परन्तु उसकी नौकरी जाति सेवा के काम में कभी बाधक नहीं होती थी। बिलकुल निर्भय, सुन्दर डीलडौल के उस सच्चे नौजवान को देखकर हृदय में अभिमान पैदा होता था। कभी किसी बड़े से बड़े खतरे के काम की आज्ञा मिलने पर मैंने उसे क्षण भर के लिये भी सोचते या घबराते नहीं देखा, आज्ञा मिलते ही मैदान में कूद पड़ना—यह राजाराम का स्वभाव था। मैंने उस समय राजाराम की आँखों में रक्त बरसता देखा तो अन्य कोई उपाय न पाकर जोरदार स्वर से आज्ञा दी—

'राजाराम क्या कर रहे हो, क्या आज्ञा का उल्लंघन करोगे ? चले जाओ यहाँ से।'

राजाराम का हाथ ढीला हो गया। उसने एक बार खून भरी आँखों से उस कोठरी की ओर देखा, जहाँ धर्मपाल जी के दाहिनें शिकंजे में पड़ा हुआ हत्यारा फड़फड़ा रहा था। वह जिस वेग से ऊपर चढ़ा था, उसी वेग से धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियों से उतर गया। सच्चा सिपाही आदेश का उल्लंघन न कर सका।

राजाराम वहाँ से तो चला गया, परन्तु उस का क्रोध शांत न हुआ उसके पश्चात् दस मिनट के अन्दर ही अन्दर नया बाजार में तीन आदमी घायल हुए, जिन में से एक जान से मर गया। इस हत्या के अपराध में जिन तीन नौजवानों पर मुकद्दमा महीनों तक चलता रहा राजाराम भी उनमें था। अन्त में सब अभियुक्त बरी कर दिये गये।

बेचारा राजाराम हवालात में बीमार हो गया था, बाहर आकर उस की देह संभल न सकी—गिरती ही गयी। अन्त में वह बाँका जवान असमय में ही जेल में लगी हुई बीमारी का ग्रास बन गया।

इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब कभी मैं राजाराम को याद करता हूं तो मेरे सामने उस की चढ़ी हुई मूंछों वाला बहादुर चेहरा जीवित रूप से आ जाता है।

डा० अन्सारी और पुलिस को साथ ही साथ टेलिफोन किया गया था, पर डाक्टर साहब पहले ही आ पहुंचे। डाक्टर साहब अकेले नहीं आये, डा० अब्दुर्रहमान को साथ लेते आये थे। इस अन्तिम बीमारी में पिता जी का इलाज डा० अन्सारी ही कर रहे थे, और जब कभी उन्हें दिल्ली से बाहिर जाना पड़ता था तब वह अपना स्थानापन्न डा० अब्दुर्रहमान को बना जाते थे।

जब डाक्टर साहब को बुलावा पहुंचा, तब उन्होंने यही समझा कि शायद निमोनिया ने अपना उग्रतम रूप धारण कर लिया है, जिस से घबरा कर डाक्टर को बुलाया गया है। १९१९ से पिता जी का डाक्टर अन्सारी से परिचय हुआ था। तब से अन्तिम समय तक पिता जी को सिवाय डा० अन्सारी के और किसी चिकित्सक का इलाज अनुकूल नहीं पड़ता था। पिता जी की अवस्था इतनी बढ़ गई थी कि जब निमोनिया के दिनों में डाक्टर जी को चार दिन के लिए भोपाल जाना पड़ा, तो पिता जी ने दूसरे डाक्टर से दवा ही नहीं ली। चार दिन तक इलाज केवल सेक-प्लास्टर और परहेज तक ही परिमित रहा। जब डाक्टर साहब भोपाल से वापिस आये तब दवा ली। इस अटल श्रद्धा का श्रेय श्रद्धालु को दें या श्रद्धा के पात्र को, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वह श्रेय दोनों में समान रूप से बँटना चाहिये। पिताजी जिसमें श्रद्धा रखते थे, अटल रखते थे। और डा० अन्सारी से जिसने एक बार इलाज करवा लिया, उसे दूसरा दरवाजा सुहाता ही नहीं था।

हां, तो जब डाक्टर अन्सारी बलिदान-भवन में पहुंचे तो आश्चर्य और दुःख से स्तब्ध रह दरवाजे में घुसते ही सारे दृश्य को देख कर परिस्थिति को समझने की चेष्टा करते रहे—कुछ देर तक जहाँ के तहाँ खड़े रह गये—मानों पाँव भूमि में गड़ गये हों। फिर आगे बढ़ कर पिता जी की नब्ज देखी—माथे और पेट को छुआ—आखों के पर्दे पलट कर देखे और जो कुछ आवश्यक समझा देखा भाला, और अन्त में आँसू भरी आखों से मेरी ओर देख कर कहा—

भाई, अब तो कुछ बाकी नहीं रहा, गोली सीधी छाती में लगी है। मृत्यु फौरन ही हो गई प्रतीत होती है। फिर डाक्टर जी धर्मसिंह की ओर मुड़े, और उसके घाव पर पट्टी बाँधने लगे।

इतने में पुलिस आ पहुंची। एक इन्सपैक्टर, दो सब इन्सपैक्टर और बहुत से सिपाही बड़ी टन फट के साथ मैदान में उतरे, मानो जंग के लिये तैयार हो कर आये हों। अनहोनी हो जाने पर शान दिखाना यह हिन्दुस्तानी पुलिस की विशेषता है।

उस समय तक—और वह समय आध घंटे से कम न होगा—धर्मपाल जी खूनी को दबाये पड़े रहे। खूनी के जिस हाथ में भरा हुआ पिस्तौल था, उसे धर्मपाल जी ने एक हाथ से दबा रखा था, दूसरे हाथ से उसके सिर को फर्श में खूंटे की तरह गाड़ रखा था, और उसकी पीठ पर अपनी छाती का पूरा जोर देकर लेटे हुए थे। कई लोगों ने बीच-बीच में सहायता के लिये हाथ बढ़ाया। उन सबको धर्मपाल जी ने दूर से हटा दिया। यह बिल्कुल ठीक था कि यदि हत्यारे पर धर्मपाल जी का शिकंजा कुछ भी ढीला पड़ जाता तो वह न जाने कितना अनर्थ कर के भाग निकलता।

सर्व साधारण को धर्मपाल जी के उस धैर्य और बल को देखकर बहुत आश्चर्य हुआ था—पर जो लोग उन्हें बचपन से जानते थे उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, विद्यार्थी अवस्था में ही साथियों पर उनकी शारीरिक दृढ़ता का आतंक था। उसके बड़े दुर्भाग्य उदित हुए समझो जो फुटबाल के मैदान में हाफ-बैक धर्मपाल के सामने पड़ जाय। यदि हाफ-बैक की लात सामने के खिलाड़ी की लात पर जा लगी तो मेजर एक्सीडेंट (भयानक दुर्घटना) का हो जाना अनिवार्य था। या तो हड्डी टूट जाती थी, अथवा टाँग पर गेंद जैसा गोला सूज आता था। यह बिल्कुल आकस्मिक था कि अब्दुल रशीद का वास्ता धर्मपाल जी जैसे ठोस आदमी से पड़ा—परन्तु विधाता की इच्छा प्रायः ऐसी घटनाओं से पूरी होती है जिन्हें मनुष्य आकस्मिक

कहता है। यह विधाता का विधान था कि पिताजी के बलिदान के कानूनी सबूत लाल हाथों के साथ ही गिरफ्तार हो। यह काम धर्मपाल जी जैसे व्यक्ति के हाथों से ही हो सकता था।

सच्चे और पक्के साथी मैंने बहुत देखे हैं, परन्तु धर्मपाल की अपेक्षा अधिक ठोस बात निभाने वाला संगी अब तक मेरे अनुभव में नहीं आया, वह पिताजी के शिष्य भी थे, और निजू मन्त्री भी—परन्तु वह सारा आध्यात्मिक सम्बन्ध था। घर से खर्च मँगा कर निर्वाह करते थे और धर्म-भाव से पिताजी की सेवा करते थे। उन्हें उस घटना से जो यश प्राप्त हुआ, वह वस्तुत: उसके अधिकारी हैं।

पुलिस अफसरों ने कमरे में पहुंच कर काफी चुस्ती से काम किया। पिता जी की मृत्यु का प्रामाणिक समाचार तो उन्हें वहां पहुंचते ही डा० अन्सारी से मिल गया था। एक सबइन्सपैक्टर धर्म सिंह की ओर झुका और दूसरा धर्मपाल जी की ओर। उस ने क्षणिक ध्यान से देखकर स्थिति को समझ लिया और धर्मपाल जी से कहा कि जब तक मैं न कहूं, तब तक शिकंजे को ढीला न कीजियेगा। तब उसने अपना रिवाल्वर हत्यारे के माथे पर रख कर कहा—'खबरदार, अगर हिला तो गोली छोड़ दूंगा' फिर फुलबूट वाला अपना दायां पाँव उसकी कलाई पर बड़े जोर से मार कर दबा दिया। जब देख लिया कि कलाई बिलकुल ढीली हो गई, तो बायें हाथ से उस का पिस्तौल पकड़ कर धर्मपाल जी से छोड़ देने को कहा, हाथ छोड़ देने पर हत्यारे का पिस्तौल सब इन्सपैक्टर के हाथ में आ गया। तब सब इन्सपैक्टर ने धर्मपाल जी को हत्यारे को छोड़ कर उठ जाने के लिये कहा।

वहाँ जितने व्यक्ति थे, सब उस दिन-दहाड़े हत्या करने वाले व्यक्ति को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, दर्शकों ने अपनी भावना के अनुसार उस का कल्पनाचित्र मन में बना रखा था। पीछे से इ

विषय में प्रायः सर्वसम्मति पाई गई कि जब हत्यारा उठकर खड़ा हुआ, तब उस की सूरत शक्ल ने दर्शक लोगों के काल्पनिक चित्रों को सर्वथा झूठा सिद्ध कर दिया। वह किसी हट्टे-कट्टे भयानक रूप वाले खूनी को देखने की आशा रखते थे, परन्तु जब देखा तो एक ऐसा अधेड़ सामने खड़ा पाया, जिस का शरीर मध्यम था। दाढ़ी-मूंछ के बाल पक रहे थे, देखने में अदालत का मुहर्रिर मालूम पड़ता था। पीछे से मालूम हुआ कि उस का नाम अब्दुलरशीद था और वह किताबत का काम करता था।

अब्दुल रशीद ने उठकर चारों ओर देखा तो उसकी नजर डा० अन्सारी पर पड़ी, कह नहीं सकते कि उसकी वह अदा स्वाभाविक थी या कृत्रिम। वह डाक्टर जी को देख कर मुस्कराया और काफी ऊँचे स्वर से उसने कहा, डाक्टर साहिब, आदाबअर्ज। उस आदाबअर्ज में किसी पहली मुलाकात की झलक आती थी। बाद में तहकीकात करने पर मालूम हुआ कि अब्दुल रशीद ने अपने खूनी संकल्प की सूचना बहुत से प्रतिष्ठित मुसलमानों को दे रखी थी। उनमें से कुछ ने उन्हें रोका, और कुछ ने प्रोत्साहित किया। डाक्टर साहब उन में से थे, जिन्होंने उसे रोका था। वह कई महीनों से विधि-पूर्वक नृशंसता की तैयारी कर रहा था। इस कार्य के समर्थन में उसने उलेमाओं का फतवा तक ले लिया था।

इतनी हल्की सी मुस्कराहट के पश्चात् अब्दुल रशीद के चेहरे पर एक गम्भीर मुर्दनी छा गई। वह उसके चेहरे का स्थायी भाव था, जो तब तक कायम रहा, जब तक वह जेल में फांसी की रस्सी से झूलकर कर्मफल पाने के लिए बड़े दरबार में नहीं चला गया।

उस दिन बलिदान-भवन में जो अमर कहानी रुधिराक्षरों से लिखी गई, उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं। वह बलिदान के विस्तृत इतिहास का एक परिच्छेद है। और यह मेरी निजू स्मृतियों का संक-

लन है। गोलीकांड के पश्चात् बलिदान-भवन में मैंने जो कुछ देखा मैं वह सुना रहा हूं।

डा० अन्सारी अपने लिए अन्य कोई कार्य न देखकर और उस स्थान के वातावरण को अत्यधिक गर्म होता अनुभव कर के चले गये। पुलिस की एक टुकड़ी अब्दुल रशीद को हथकड़ी बेड़ी डाल और लारी में बिठा कर कोतवाली ले गई, और दूसरी टुकड़ी बलिदान-भवन के पहरे पर तैनात कर दी गई। इस समय वहाँ पुलिस के कई ऊंचे अफसर पहुंच चुके थे, और बयान लिये जाने लगे थे।

यह स्वाभाविक ही था कि ऐसी भयंकर साम्प्रदायिक दुर्घटना से उस स्थान पर और धीरे-धीरे सारे शहर में साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि चारों ओर प्रचण्ड हो उठती। वह घटना साधारण नहीं थी। ३० करोड़ व्यक्तियों के एक सर्वसम्मानित धर्माचार्य की, दूसरे मत के अनुयायी द्वारा केवल धार्मिक मतभेद के कारण हत्या इतिहास में प्रतिदिन नहीं होती। वह कभी-कभी होती है, और जब कभी होती है, तब इतिहास में नये युग का आरम्भ हो जाता है। इस दुर्घटना ने भी भारत के इतिहास में एक नया युग आरम्भ कर दिया था। हत्या के पश्चात् थोड़े ही क्षणों में बलिदान-भवन से फैल कर एक आधे घण्टे के अन्दर-अन्दर दिल्ली शहर में, और शायद दो वा तीन घण्टों में सारे देश में उस आए हुए युग की सरसराहट सुनाई देने लगी थी। संसार में कभी कोई वस्तु सर्वथा निर्गुण या निर्दोष नहीं होती। जो नया युग एक मजहबी पागल की घिनौनी चेष्टा के कारण पैदा हो वह निर्दोष होता भी कैसे ? उस नये युग के भी दो पहलू थे—एक बुरा और एक अच्छा। बुरा पहलू यह था कि हिन्दू-जाति के बड़े भाग में एक अद्भुत जाग्रति ने जन्म लिया। पहला फल अब्दुल रशीद की दुष्टता का था। अच्छी क्रिया की अच्छी, और बुरी क्रिया की बुरी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। इस लिए केवल विवेचनात्मक दृष्टि से देखें तो उस सन्ध्या समय की दुर्घटना से हिन्दू-जाति पर जो अच्छे

और बुरे प्रभाव पड़े वे सर्वथा स्वाभाविक थे। उन पर प्रसन्न होना, या दुखी होना अपनी तबियत का परिणाम हो सकता है, परन्तु उन की स्वाभाविकता में शायद ही कोई मतभेद हो।

संस्मरण के इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मैं दो तीन आप-बीती चीजें पाठकों को और सुना देना चाहता हूं। जिस समय इधर अब्दुल रशीद अपनी मूर्खता भरी चेष्टा से इस्लाम के माथे पर कलंक का टीका लगा रहा था, उधर गोहाटी में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन की तैयारियां हो रही थीं। स्वागताध्यक्ष महोदय ने पिता जी को एक निजू पत्र लिखकर विशेष आग्रह से महासभा के अधिवेशन में निमन्त्रित किया या। उस पत्र का उत्तर पिताजी की आज्ञा से मैंने ही दिया था। उसमें अस्वस्थता के कारण न जा सकने पर दुःख प्रकट करते हुए अधिवेशन की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई थी। पत्र पहुंचने पर स्वागताध्यक्ष ने एक तार द्वारा सन्देश की प्रार्थना की। वह संदेश का तार भी पिता जी के आदेश के अनुसार मैंने ही लिखा था। मैं केवल स्मृति से उस तार को उद्धृत कर रहा हूं। इसमें किसी शब्द का भेद हो सकता है, अभिप्राय का नहीं। तार यह था—

On Hindu-Muslim unity depends future well-being of India.

भारत का भावी सुख हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आश्रित है।

यह सन्देश निमोनिया की उग्र दशा में प्रभात की शान्त वेला में बीमार की चारपाई पर से लिखवाया गया था। इस कारण मान लेना चाहिए कि यह सन्देश देने वाले की अन्तरात्मा का सन्देश था। स्नातक होने के पश्चात् लगभग १६ वर्ष तक पिता जी के निरन्तर समीप रहने पर मुझे जो अनुभव हुआ उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि उपर्युक्त सन्देश पिता जी की अन्तरात्मा का सन्देश था। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे, परन्तु साथ ही उन का यह भी

विश्वास था कि वह एकता तब तक जन्म नहीं ले सकती, जब तक हिन्दूजाति के निर्बल हिन्दू सबल मुसलमानों के मित्र नहीं बन सकेंगे। इस कारण वे हिन्दुओं को मुसलमानों के समान मित्र बनाने के पक्ष-पाती थे। उनके हिन्दू-संगठन का अभिप्राय मुस्लिम विरोधी नहीं था—अपितु जाति के आन्तरिक दोषों को दूर करना था।

मनुष्य के लिए सब से कठिन काम अपनी भावनाओं का ठीक विश्लेषण करना है। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये दूसरे व्यक्ति का मन एक वन्द कमरा है जिसके अन्दर की असली दशा का वह केवल अनुमान लगा सकता है। अनुभव बतलाता है कि मनुष्य कभी-कभी अपने अन्दर की असली दशा का अनुमान भी नहीं लगा सकता, वह उसके लिये केवल बन्द कमरा ही नहीं, अभेद्य दुर्ग बन जाता है, जिसके अन्दर का अनुमान लगाना भी उसके लिए असम्भव हो जाता है। आत्म-विश्लेषण अन्य रासायनिक तथा मनो-वैज्ञानिक विश्लेषणों की अपेक्षा कठिन कार्य है।

यही कारण है कि मुझ से जब एक मित्र ने पूछा, जब स्वामी जी का बलिदान हुआ तब आप को कैसा अनुभव हुआ? मैं बहुत देर तक चुप रह कर सोचता रहा कि क्या उत्तर दूं, पाठक मेरा यह इकबाली बयान सुन कर आश्चर्यित होंगे, वह सोचेंगे कि इस प्रश्न का उत्तर तो निश्चित ही है, और वह यह कि 'मुझे अपार दुःख हुआ।' यह तो मैं कैसे कहूं कि मुझे अपार दुःख नहीं हुआ, परन्तु जब आत्मविश्लेषण करके देखा तो केवल इतना उत्तर देने की हिम्मत नहीं पड़ी—क्योंकि उत्तर अधूरा होता। अपने अन्दर आखें डाल कर भी ठीक-ठीक नहीं देख सका कि उस असाधारण घटना ने मेये हृदय और मस्तिष्क पर क्या-क्या और किस क्रम से प्रतिक्रियाएँ पैदा कीं।

समाचार सुनने का पहला असर मुझ पर यह हुआ कि ठीक परि-स्थिति जानने की इच्छा पैदा हुई। यों दुर्घटना का समाचार मुझे बिल्कुल आकस्मिक या अनहोना प्रतीत नहीं हुआ। मानो किसी प्रकार

इस कप्रार के समाचार की तो प्रतीक्षा ही थी। इस के दो कारण थे, पहला कारण यह था कि लगभग दो वर्ष से पिता जी को मुसलमान पत्रों में छपी हुई, और डाक द्वारा बिना नाम के खुली धमकियाँ दी जा रही थीं। शुद्धि-सभा का प्रधान पद स्वीकार कर लेने के कारण धर्मान्ध मुसलमानों में पिता जी के प्रति क्रोध की भावना उत्पन्न की जा रही थी जिसका प्रकाशन धमकियों के रूप में होता रहता था। इस असन्तोषाग्नि पर उन दिनों चलाए गए प्रसिद्ध शान्तिदेवी केस ने घी का काम दिया। केस चोटी से एड़ी तक बनावटी था। असगरी बेगम (शान्तिदेवी) को दिल्ली लाने, वनिता आश्रम में प्रविष्ट कराने या धर्म-परिवर्तन कराने में पिता जी या अन्य किसी हिन्दू या आर्य कार्य-कर्ता का हाथ नहीं था, परन्तु दिल्ली के कुछ मुसलमानों ने शांतिदेवी के पिता और मुसलमान पति को प्रेरणा देकर बिलकुल झूठा मुकद्दमा दायर करवा दिया, जिस की दो तीन पेशियों में ही असलियत प्रकट हो गई, और हम लोगों की निर्दोषता का अदालत ने फैसला कर दिया परन्तु अदूरदर्शी मदान्ध लोगों ने जो विष बिखेरा था वह अपना काम कर गया। नासमझ मुसलमानों का पिता जी के प्रति विद्वेष भाव चरम सीमा तक पहुँच गया।

परिणाम यह हुआ कि वायुमण्डल सन्देह और आशंका से भर गया। पिता जी के मन में खतरे या खतरे की धमकी से सदा उल्टी ही प्रति-क्रिया उत्पन्न होती थी। वे खतरे से डरने की जगह, खतरे का सामना करने और उस पर हावी होने के लिये तत्पर हो जाते थे। हम लोगों की चिन्ता या सावधानता उन पर कोई प्रभाव नहीं डालती थी। कभी कभी जब उन्हें सन्देह हो जाता था कि लोगों ने उनकी संरक्षा के लिये पहरा लगाया है, तो रात के समय चुपचाप अकेले बाजार में घूमने के लिये निकल जाते थे और लालकुआँ, सदर बाजार आदि प्रमुख मुसल-मान हिस्सों का चक्कर काट आते थे। इन सब कारणों से हम लोग सदा शंकित रहते थे। कब क्या अनहोनी हो जाय, इस की मासों प्रतीक्षा करते रहते थे।

सो जब दुर्घटना का पहला समाचार मिला तो ऐसा अनुभव हुआ जैसे जो होनी थी, वह हो कर रही।

एक और भी बात थी, जिसने हमारे हृदयों को इस दुर्घटना के लिये तैयार सा कर दिया था। अपने सदा के स्वभाव के सर्वथा विपरीत, लगभग एक मास से पिताजी शरीरत्याग की चर्चा किया करते थे। यों स्वभाव से वह घोर आशावादी थे—जैसा कि एक कट्टर आस्तिक को होना चाहिये। परन्तु बलिदान से लगभग एक घण्टा पूर्व ही उनकी बातचीत का रुख बदल गया था। मैंने उनकी बड़ी-बड़ी बीमारियाँ देखी थीं। वे कभी हारी हुई बात नहीं करते थे, हारी हुई बात करने वाले को ढाढ़स दे कर कहा करते थे तुम चिन्ता क्यों करते हो ? अभी धर्म की सेवा के लिये मेरे शरीर की आवश्यकता है, उस की रक्षा परमात्मा करेगा। १९२६ के अन्त में जब उन पर निमोनिया का आक्रमण हुआ, उससे पूर्व ही उनकी भाषा में परिवर्तन आ गया था। नवम्बर के अन्त में वह लाहौर गये और गुरुदत्त-भवन में व्याख्यान दिया। सुनने वाले बतलाते हैं कि उस व्याख्यान में उन्होंने यह भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि सम्भवतः लाहौर में उनका यह व्याख्यान अंतिम है। ऐसा ही भाव उन्होंने दो-तीन अन्य व्याख्यानों में भी प्रकट किया था।

रोगी होने पर तो वह प्रायः नित्य ही ऐसी बात करते थे, यों भाषा में कुछ भेद आ गया था।

बलिदान से दो दिन पूर्व व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु जी शास्त्री आपका स्वास्थ्य समाचार पूछने आये। कुशल समाचार पूछने पर आपने कहा डाक्टर कहते हैं अच्छा है, शास्त्री जी ने मुस्करा कर पूछा कि आपकी क्या सम्मति है ? पिताजी ने उत्तर दिया—मेरी तो अब जीने की इच्छा नहीं है।' इस पर शास्त्री जी ने कहा—

'स्वामी जी, मुझ से मालवीय जी एक-डेढ़ वर्ष बड़े हैं,

श्रौर श्राप उन से एक वर्ष बड़े हैं। श्रभी हम लोगों को बहुत सा काम करना है। श्राप क्यों इतनी जल्दी मोक्ष की तैयारी करने लगे। श्रब तो श्राप राजी हो जाश्रोगे।' पिताजी ने उत्तर दिया—

'पण्डित जी, इस समय मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं, मैं तो चोला बदल कर दूसरा शरीर धारण करना चाहता हूं। श्रब यह शरीर सेवा के योग्य नहीं रहा, इच्छा है फिर भारतवर्ष में ही पैदा होकर फिर इसकी सेवा करूं।

२२ दिसम्बर के प्रातःकाल ५ बजे के लगभग पिताजी का सेवक धर्मसिंह मुझे घर बुलाने श्राया। उसी समय डा० सुखदेव जी को श्रौर लाला देशबन्धु जी को भी बुलाया गया था। हम सब के एकत्र हो जाने पर पिता जी ने कहा—'भाई, मेरी वसीयत लिखा लो। इस शरीर का कुछ भरोसा नहीं। कब क्या हो जाय, यह भगवान् के सिवाय किसी को पता नहीं।'

उसी दिन पिताजी की तबियत काफी श्रच्छी समझी जा रही थी। डा० श्रन्सारी ने पहले दिन कहा था कि श्रब कोई खतरा नहीं रहा। डा० सुखदेव जी ने निवेदन किया कि श्रब चिन्ता या घबराहट की कोई बात नहीं। श्राप शीघ्र ही बिल्कुल ठीक हो जायेंगे, हम लोग भी इस निवेदन में शामिल हो गये, श्रौर यह समझ कर कि वसीयत लिखने का पिताजी के दिल पर बुरा श्रसर न हो, लिखने में श्रानाकानी करने लगे। पिताजी इस बात से कुछ खिन्न से हो गये, श्रौर कहा—'श्रच्छा भाई, तुम्हरी मर्जी, पर मैं जो कुछ चाहता हूँ वह सुन तो लो। जब चाहो तब लिखा लेना।' हम लोग सुनने लगे। उस समय हम लोग चर्म के चक्षुश्रों से देखते थे श्रौर पिता जी ज्ञान के चक्षुश्रों से। श्रन्यथा हम से ऐसो हिमाकत भरी भूल न होती कि हम उनके शब्दों को लेखबद्ध न करते। हम से इतनी बड़ी भूल हुई कि उसका मार्जन नहीं हो सकता। यह समझकर कि रोगी को यह श्रनुभव न होने देना चाहिए कि उनकी दशा चिन्ताजनक

है, हम ने उस समय की बातों को पूरी तरह हृदयंगम नहीं किया। पीछे से स्मृति को ताजा करने पर निम्नलिखित बातें ध्यान में आईं—

आपने अपनी निम्नलिखित इच्छाएँ प्रकट की थीं—

१. मैं आर्यसमाज का इतिहास लिखना चाहता था। लिख नहीं सका, इन्द्र उसे लिख कर पूरा कर दे।
२. 'तेज' और 'अर्जुन' पत्र मेरी भावना के अनुसार चलते रहें।
३. गुरुकुल की रक्षा की जाय।

२३ दिसम्बर को बलिदान से कुछ ही समय पहले शुद्धि-सभा के प्रधान सर राजा रामपालसिंह के स्वास्थ्य सम्बन्धी तार के उत्तर में पिताजी ने जो तार दिलवाया था, उसमें लिखा था कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर इस जीवन के अधूरे काम को पूरा करूँ।

यही कारण था कि जब मुझे जीवनलाल जी ने स्वामी जी पर गोली चलने का समाचार दिया तब वह आकस्मिक नहीं प्रतीत हुआ। सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह तो होने वाला ही था—पर हुआ कैसे? अभी तो हम लोग उठ कर आये हैं, इतने में क्या हो गया?

जाकर देखा तो किंकर्तव्यता सामने आ गई। ध्यान उस ओर चला गया। शहर में बलिदान का समाचार हवा की तरह फैल गया और श्रद्धानन्द बाजार में भीड़ इकट्ठी होने लगी। हरेक के दिल में दुःख था, और आँखों में जोश। जिसे देखता, वह इतना प्रभावित दिखाई देता कि जितना कोई सम्बन्धी भी नहीं हो सकता। मैं उस समय अपने को विशेष रूप से दुःखी कैसा समझ लेता। मैं उनका पुत्र था, पर अन्य लोग उनकी स्मृति पर मुझ से बढ़ कर दावा कर रहे थे। अनुभव होता था कि सारी दुनिया मेरे साथ समवेदना प्रकट करना चाह रही है—और मेरी अपेक्षा भी मुझ से अधिक वेदना प्रकट करना चाहती है। इस कारण मैं समवेदना का पूरा अनुभव नहीं कर सका, और न उसे प्रकट ही कर सका।

इस सहानुभूति की भावना के साथ एक और चीज भी मिल गई। स्वभावतः मुझे अनुभव हुआ कि यह बड़ा भारी बलिदान था। जैसी कहानियाँ और घटनाएँ इतिहास में पढ़ते आये थे, यह तो वैसी ही हो गई। मेरे पिता जी शहीद हो गये, वे अमर पदवी को प्राप्त हो गये, इस विचार ने मेरे दिल को भर दिया। इसे मनोविज्ञान के पंडित किस दृष्टि से देखेंगे, शायद वे मेरी भावना को क्षुद्र ही समझेंगे, यह सम्भावना होते हुए भी यह स्वीकार कर लेने में मुझे संकोच नहीं कि इस विचार ने मेरे हृदय में अभिमान मिश्रित सन्तोष की बाढ़ सी ला दी। परिणाम यह हुआ कि जब तक वह दिल्ली के इतिहास में स्मरणीय अर्थी का जलूस निगमबोध घाट पर पहुंच कर, दाहक्रिया कर के वापिस नहीं आ गया, तब तक मैं बिल्कुल स्थिर रहा। शायद मुझ से मिलने वाले मेरी उस स्थिरता से आश्चर्यित होते होंगे। या तो वे उसे मेरी दृढ़ता का प्रमाण मानते होंगे अथवा हृदयहीनता का। वस्तुतः दोनों ही बातें नहीं थीं। वह स्थिरता उन परिस्थितियों का परिणाम थी जिनका मैंने ऊपर वर्णन किया है।

मैंने स्वयं इस बात को तब अनुभव किया, जब यमुना के तट से लौटकर और सहानुभूति प्रकट करने वाले मित्रों से अवकाश पाकर मैं अकेला अपने कमरे में पहुंचा। कमरे में मेरी बैठने की कुर्सी के ऊपर पिताजी का बड़ा चित्र था (अब वह मेरी कुर्सी के सामने रखा हुआ है) और मैं था। उस समय एक-दम मैंने अनुभव किया कि मैं अकेला रह गया। मेरे बड़े भाई पहले ही विलायत जाकर लापता हो चुके थे, पिताजी चले गये—और अब इस तूफानी दुनिया में—आकाश और पृथवी के बीच में मैं अकेला लटकता रह गया, मन में यह भाव आते ही मेरा वह कृत्रिम धर्म और स्थिर भाव जाता रहा और आँसू मानो बाँध को तोड़कर बह निकले। मैं बहुत देर तक, और आवाज के साथ रोया—यह मुझे भली प्रकार याद है।

("मेरे पिता : संस्मरण" से उद्धृत)

बादल की भाँति बरसने वाला संन्यासी

—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

ऋषि दयानन्द के महान् शिष्य और आर्य समाज के महान् नेता स्वामी श्रद्धानन्द एक आदर्श संन्यासी थे। वेद में जहां संन्यासी के अन्य अनेक गुण धर्मों का वर्णन किया गया है वहाँ उसके लिये यह भी कहा गया है कि संन्यासी को 'मीढ्वान्' अर्थात् बादल की तरह बरसने वाला होना चाहिये। बादल जिस प्रकार अपना सब कुछ संसार के कल्याण के लिये बरसा देता है उसी प्रकार संन्यासी को भी अपना सब कुछ जनता के कल्याण लिये बरसाते रहना चाहिये। स्वामी श्रद्धानन्द इसी प्रकार मेघ की भांति जनता के कल्याण के लिये बरसते रहने वाले संन्यासी थे। जीवन भर उनके पास जो कुछ भी था उसे वे जनता के कल्याण के लिये ही बहाते रहे। अपना समय, अपना ज्ञान, अपना धन और अपना शरीर सब कुछ उन्होंने जनता के कल्याण के लिये समर्पित कर रखा था।

ऋषि दयानन्द से साक्षात्कार होने के पश्चात् जब वे नास्तिक से विशुद्ध आस्तिक बन गये और वैदिक धर्म पर उनकी पूर्ण आस्था जम गई तथा उन्होंने समझ लिया कि वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के

अनुसार चलने पर ही मानव जाति का कल्याण हो सकता है तो उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य वना लिया और समग्र शक्ति से इसी काम में लग गये। अपने प्रारम्भिक जीवन में वे जालन्धर नगर में वकालत का कार्य करते थे। जितना समय वे वकालत के काम में लगाते थे उससे कहीं अधिक समय वे वैदिक धर्म के प्रचार में देते थे। वे आर्यसमाजों के उत्सवों में जाकर व्याख्यान देते थे। उत्सवों के आरम्भ में किये जाने वाले नगर कीर्तनों में वे जुलूस के साथ भजन गाते हुए नगर की गली-गली में घूमते थे, जगह जगह स्टूलों पर खड़े होकर नगर की जनता को वैदिक धर्म का संदेश सुना कर उसे वैदिक धर्म का अनुयायी बनने का निमंत्रण देते थे और समाज के उत्सव में उपस्थित होकर वहाँ होने वाले कार्यक्रम को देखने और सुनने की प्रेरणा करते थे। वर्षभर उनका यह कार्यक्रम चलता रहता था। वे प्रचार कार्य के लिये समाजों में जाने पर कभी वहाँ से मार्ग व्यय आदि नहीं लेते थे। प्रत्युत समाजों को अपनी ओर से एक अच्छी राशि दान में देकर आते थे। समाजों के उत्सवों के अवसर पर वे वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में लोगों की शंकाओं का समाधान भी करते थे। और कभी-कभी तो उन्हें विधर्मियों से शास्त्रार्थ भी करने पड़ जाते थे। इस प्रकार वे वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में अपने समय, ज्ञान, धन, और शक्ति को निरन्तर प्रवाहित करते रहते थे।

वे मौखिक रूप में ही वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में निरत नहीं रहे, लिखित रूप में भी उन्होंने इस क्षेत्र में बड़ा भारी कार्य किया। इसके लिये उन्होंने साप्ताहिक पत्र सद्धर्म प्रचारक का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्र अपने समय में आर्य समाज का सर्वश्रेष्ठ पत्र समझा जाता था। यह पत्र इतना लोकप्रिय था और उसमें प्रकाशित होने वाले स्वामी जी (उस समय महात्मा मुंशीराम) के लेखों को पाठक इतना पसन्द करते थे कि उसके डाक से आने की तिथि

की वे उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा किया करते थे। उस समय सद्धर्म प्रचारक आर्य समाज का प्रतिनिधि पत्र था और उसे आर्य समाज की आवाज समझा जाता था। प्रारम्भ में "सद्धर्म प्रचारक" उर्दू में निकलता था। स्वामी जी ने आगे चलकर एकाएक घोषणा कर दी कि अमुक तिथि से "सद्धर्म प्रचारक" आर्यभाषा (हिन्दी) में निकला करेगा और वह हिन्दी में निकलने लगा। उसके पाठकों ने स्वामी जी के लेखों को पढ़ते रहने के लिये हिन्दी सीख ली थी। जनता में स्वामी के लेख और विचार इतना अधिक पसन्द किये जाते थे। "सद्धर्म प्रचारक" के प्रकाशन और संचालन में स्वामी जी को पर्याप्त घाटा सहना पड़ता था। पर वे वैदिक धर्म के प्रचार के इतने मतवाले थे कि उन्होंने कभी इस घाटे की परवाह नहीं की और अपने अन्य साधनों से उस घाटे की पूर्ति करते रहे। आगे चलकर उन्होंने आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रेक्टर्स, इज आर्य समाज ए पोलिटिकल बौडी आदि पुस्तकें अंग्रेजी में और आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त आदि पुस्तकें हिन्दी में लिखीं और प्रकाशित कीं। लेख द्वारा आर्य समाज के प्रचार के क्षेत्र में भी इसी प्रकार स्वामी जी अपने ज्ञान, समय, धन और शक्ति का प्रवाह जनता के कल्याण के लिये निरन्तर बढ़ाते रहे।

जब स्वामी जी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मौखिक और लिखित प्रचार तक सीमित रह कर ही वैदिक धर्म का प्रचार पूर्ण रूप से नहीं हो सकता, इसके लिये शिक्षणालय भी खोले जावें चाहिये और उनमें शिशु काल से ही बालकों को वैदिक धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिये और आरम्भ से ही उन का जीवन वैदिक धर्म की पद्धति में ढाला जाना चाहिए, तो उन्होंने हरिद्वार में गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना की। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, लाहौर में जिसके उस समय वे प्रधान भी थे, जब गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव उन्होंने रखा तो यह प्रश्न सामने आया कि गुरुकुल खोलने के लिये

आरम्भ में जो पुष्कल राशि आवश्यक होगी वह कहाँ से आयेगी। स्वामी जी ने प्रतिनिधि सभा को कहा कि यह राशि भी मैं एकत्र कर दूंगा। सभा को यह वचन देकर स्वामी जी यह प्रतिज्ञा करके कि जब तक गुरुकुल के लिये कम से कम तीस सहस्र रुपये की राशि एकत्र नहीं कर लूंगा तब तक अपने घर में पैर नहीं रखूंगा, धन संग्रह के लिये निकल पड़े। गुरुकुल शिक्षा प्रणाणी का विचार लोगों के लिये सर्वथा नया था और लोग इसे एक विचित्र सी बात समझते थे, साथ ही आर्य समाज का भी उस समय प्रचार अधिक नहीं था, तथा आर्य समाज का विरोध भी उस समय बहुत अधिक था, ऐसी अवस्था में उस समय तीस सहस्र रुपये इकट्ठा कर सकना एक असम्भव-सी बात लगती थी। **उस** समय तीस सहस्र रुपये इकट्ठा करना इतना ही अधिक कठिन कार्य था जितना कठिन आजकल तीस लाख रुपये इकट्ठा करना होता है। प्रत्युत उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए इस से भी अधिक कठिन कार्य था। स्वामी जी वज्र के समान दृढ़ निश्चय के साथ इस कार्य के लिये निकल पड़े। निरन्तर छः मास तक देश के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे। जब प्रतिज्ञात राशि एकत्र हो गई तब स्वामी जी ने अपने घर में पैर रखा। और इस प्रकार गुरुकुल की स्थापना की गई। गुरुकुल स्थापित हो जाने पर स्वामो जी ही उसके प्रथम आचार्य और मुख्याधिष्ठाता बनाये गये और गुरुकुल के संचालन का सम्पूर्ण कार्य भार उन्हीं के कन्धों पर डाला गया। सन् १९०० में गुरुकुल के स्थापना काल से निरन्तर १७ वर्ष तक स्वामी जी ने गुरुकुल का संचालन किया। फूस की झोंपड़ियों से प्रारम्भ होने वाली छोटी सी पाठशाला को स्वामी जी ने एक विशाल और जगत्प्रसिद्ध संस्था के रूप में परिणत कर दिया। गुरुकुल के संचालन में स्वामी जी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। दिनरात एक कर दिया। अपना खून पसीना भी एक कर दिया।

इसी समय एक घटना घटी। गुरुकुल का प्रारम्भ से ही बहुत विरोध हो रहा था। स्वयं आर्य समाज में भी उसके अनेक विरोधी थे। यहां तक कि आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, में भी अनेक व्यक्ति गुरुकुल के विरोधी थे। ये लोग कहा करते थे कि गुरुकुल में पढ़े लड़के बिलकुल बुद्धू और अयोग्य होंगे। ये लड़के गुरुकुल से पढ़कर बाहर आकर आजीविका नहीं कमा सकेंगे, भूखे मरेंगे। कहा जाने लगा कि स्वामी जी (महात्मा मुंशीराम) की तो अपनी कोठी है, प्रेस है, वकालत से कमाया रुपया है, और बहुत कुछ है। गुरुकुल से पढ़कर आने पर उनके दानों लड़कों को तो यह सब मिल जायेगा। दूसरों के लड़कों का क्या होगा ? वे तो भूखे मरेंगे। विरोधियों की ये चर्चायें स्वामी जी के कानों तक भी पहुंचीं। स्वामी जी अपनी सम्पत्ति का बड़ा अंश तो पहले ही गुरुकुल के निमित्त प्रतिनिधि सभा को दान दे चुके थ। उन्होंने बचे हुए अपने सद्धर्म प्रचारक प्रेस और कोठी को गुरुकुल के लिए दान देने का निश्चय कर लिया। गुरुकुल में पढ़ रहे अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र से इस सम्बन्ध में परामर्श करके उनकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। गुरुकुल के अगले वार्षिक उत्सव पर जब स्वामी जी गुरुकुल के लिये धन संग्रह की अपील करने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अपील यहीं से आरम्भ की कि "लोग कहते हैं कि मुन्शीराम (स्वामी जी का पूर्वनाम) के पास तो कोठी है, प्रेस है, उसके लड़के तो गुरुकुल से निकल कर कोठी में रहने लगेंगे और प्रेस चलाने लगेंगे, उनकी जीविका का तो हल हो जायेगा, पर दूसरों के लड़कों का क्या बनेगा ? मैं आज इसका भी उत्तर देने लगा हूं। और इसका उत्तर यह है कि मैं अपनी कोठी और प्रेस भी गुरुकुल के लिये दान कर रहा हूँ। अब मेरे लड़के भी गुरुकुल से निकलने पर किसी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी और स्वामी नहीं होंगे। उन्हें भी गुरुकुल के दूसरे स्नातकों की भाँति अपने पुरुषार्थ और बुद्धि बल से ही अपनी जीविका अर्जित करनी पड़ेगी और अपने लिये संसार में स्थान

बनाना पड़ेगा। अरे, जो सहस्रबाहु भगवान् जल, स्थल, और नभ में रहने और विचरण करने वाले प्राणी मात्र को जीविका दे रहा है वह गुरुकुल के स्नातकों को भी भूखा मरने नहीं देगा।" इस घोषणा के साथ उन्होंने अपना सर्वस्व गुरुकुल के लिये समर्पित कर दिया। इस प्रकार ऋषि दयानन्द द्वरा प्रतिपादित प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्धार और प्रचार के क्षेत्र में भी अपने समय, धन, ज्ञान और शक्ति को मानव के कल्याण की भावना से उसी प्रकार बरसा दिया था जैसे बादल अपने पानी को बरसा देता है।

इस प्रकार सत्रह वर्ष तक गुरुकुल और उससे पूर्व आर्य समाज और आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव, के क्षेत्र में कार्य करने के पश्चात् १९१७ में संन्यास लेकर वे महात्मा मुन्शीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गए। अब वे दिल्ली में रहने लगे और उसे अपने कार्य का केन्द्र वना कर आर्यसमाज का कार्य तो यथापूर्व करते ही रहे, उसके साथ ही आर्य समाज के बाहर के राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों में भी भाग लेने लगे। उनमें कार्य करने की इतनी प्रबल और असीम शक्ति तथा नेतृत्व का इतना स्वाभाविक गुण था कि वे शीघ्र ही इन आन्दोलनों में भी अग्रगण्य नेताओं की पंक्ति में जा पहुंचे। आर्य समाज के तो वे सर्वप्रमुख नेता थे ही। हिन्दू महासभा में भी उन्होंने कार्य किया। कांग्रेस में भी उन्होंने कार्य किया। १९१९ का अमृतसर में होने वाला कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन तो उन्हीं के साहस और कार्य शक्ति के कारण संभव हो सका था। वे उस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। उन दिनों पंजाब में चल रहे ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र और जलियांवाला बाग में सरकार द्वरा किये गये हत्याकाण्ड के कारण पंजाब में इतना आतंक छाया हुआ था कि वहां काँग्रेस का अधिवेशन कराने का किसी को साहस ही न होता था। स्वामी जी ने यह भार अपने कंधों पर लिया। अधिवेशन बड़ी शान और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। सिक्खों के गुरु का बाग आन्दोलन में ब्रिटिश सरकार सिक्खों के साथ बड़ा अन्याय और अत्याचार कर

रही थी। स्वामी जी से यह देखा नहीं गया। स्वामी जी सिक्खों की माँगों के समर्थन में उस आन्दोलन में भी अग्रसर होकर भाग लेने लगे और उन्हें सरकार ने दो साल के लिये जेल में डाल दिया। देश में चल रहे स्वतंत्रता के आन्दोलनों को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन दिनों एक कानून बनाया था, जो कि रौलट एक्ट के नाम से प्रसिद्ध था। इस कानून से देश में रोष की तीव्र लहर चल पड़ी थी। ३० मार्च १९१९ को गांधी जी के आवाहन पर देश-व्यापी हड़ताल हुई। दिल्ली में भी उस दिन हड़ताल हुई। उन दिनों दिल्ली का, राजनैतिक नेतृत्व स्वामीजी के हाथ में था। उनके नेतृत्व में हुई दिल्ली की यह हड़ताल अभूतपूर्व थी। हड़ताल के प्रसंग में स्वामी जी के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस भी निकाला गया। जब यह जुलूस चांदनी चौक बाजार में घंटाघर के स्थान पर पहुंचा तो सेना को गोरखों की एक टुकड़ी जुलूस के आगे आ गई और उसे आगे बढ़ने से रोका। स्वामी जी ने कहा कि जुलूस नहीं रुकेगा। इस पर पलटन के कमाण्डर ने कहा कि अगर जुलूस नहीं रोका गया तो गोली चला दी जायेगी। स्वामी जी ने उसी समय छाती खोलकर तड़क कर कहा कि लो यह मेरी छाती खुली है, चला दो उस पर गोली, जुलूस नहीं रुकेगा। उसी समय एक ऊंचे अंग्रेज अधिकारी ने दौड़कर आकर यह कांड रुकवाया और जुलूस को आगे जाने दिया। इन सब प्रसंगों में भी स्वामी जी ने जनता के कल्याण के लिये अपना सब कुछ होम कर दिया था और प्राणों की भी परवाह नहीं की थी। बादल की भाँति जनता के कल्याण के लिये अपना सब कुछ बहाते रहे थे।

आगे चलकर राजनैतिक दृष्टि से अपनी संख्या में वृद्धि करने के लिये मुसलमानों ने तबलीग का आन्दोलन चलाकर भारी संख्या में हिन्दुओं को मुसलमान बनाना शुरू कर दिया। इस काम में वे तरह-तरह के प्रलोभनों और छल-छन्दों का सहारा लेते थे। हिन्दुओं

में इससे भारी चिन्ता फैल गई। आर्य समाजियों के लिये तो इससे चिंतित होना स्वभाविक था। हिन्दू और आर्य नेताओं ने तबलीग का प्रतिकार करने के लिये शुद्धि का आन्दोलन चलाया। स्वामी जी इस शुद्धि आन्दोलन के भी सर्वप्रमुख नेता बने। वस्तुतः जो भी आन्दोलन अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड़ा होता था स्वामी जी उसी में सहयोग देने के लिये अपनी समग्र शक्ति से कूद पड़ा करते थे। उनके नेतृत्व में शुद्धि आन्दोलन भी चमक उठा और प्रबल वेग से चलने लगा। इस आन्दोलन की देश में धूम मच गई। लाखों की संख्या में मूले जाट नामक मुसलमानों को जो कि किसी समय जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये थे और जो पुनः हिन्दुओं में आना चाहते थे, परन्तु हिन्दू उन्हें वापिस नहीं ले रहे थे, शुद्ध करके हिन्दुओं में वापिस लिया गया। अन्य अनेक मुसलमानों को भी जो कि वैदिक धर्म में प्रवेश करने के इच्छुक थे शुद्ध करके वैदिक धर्म में प्रविष्ट किया गया। स्वामी जी के इस आन्दोलन से कट्टरपन्थी मुसलमान तिलमिला उठे और स्वामी जी के घोर विरोधी हो गये। स्मरण रहे कि डा० अन्सारी, हकीम अजमल खां और श्री आसफ अली आदि उदार विचारों के मुसलमान स्वामी जी से बड़ा प्रेम रखते थे। डा० अन्सारी तो स्वामी के निजी चिकित्सक ही थे। कट्टरपन्थी मुसलमानों के अखबारों में स्वामी जी के विरुद्ध भड़काने वाले लेख लिखे जाने लगे और मस्जिदों में उनके विरुद्ध जहरीले भाषण दिये जाने लगे। स्वामी जी को मार डालने की धमकियां दी जाने लगीं। कट्टरपन्थी मुसलमानों के स्वामी जी के विरुद्ध इस जहरीले आन्दोलन के परिणामस्वरूप २३ दिसम्बर १९२६ को अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध मुसलमान ने, धर्म जिज्ञासा के बहाने से उनके पास जाकर धोखे से, उन की छाती को पिस्तौल की गोलियों से बींध दिया, जबकि वे भयंकर रोग से मुक्त होकर दुर्बल अवस्था में, रोग शय्या पर पड़े विश्राम कर रहे थे।

इस प्रकार जो स्वामी श्रद्धानन्द जीवन भर जनता के कल्याण के लिये विभिन्न कार्यक्षेत्रों में अपना समय, अपना धन, अपना ज्ञान और अपनी शक्ति, अपना सबकुछ, बादल की तरह बरसाते रहे, इन्होंने अन्त में वैदिक धर्म और आर्य हिन्दू जनता की सेवा में अपने पवित्र रुधिर की धारा भी बरसा दी। सचमुच स्वामी श्रद्धानन्द वेद के शब्दों में, "मीढ्वान्" संन्यासी थे, बादल की तरह बरसने वाले संन्यासी थे।

उनके बलिदान की अर्द्ध-शताब्दी के अवसर पर आज हम उन के कार्यों, गुणों और उपकारों का स्मरण कर रहे हैं। क्या हम उनके मानव कल्याण की कामना से अपना सब कुछ न्योछावर कर देने के, बादल की भांति सब कुछ बरसा देने के इस परमोत्कृष्ट गुण को भी आज स्मरण करेंगे? उनके इस उदात्त गुण को भी अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करेंगे?

●

वीरता और बलिदान की मूर्ति

सरदार वल्लभभाई पटेल

स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आते ही १९१९ का दृश्य मेरी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं। स्वामी जी छाती खोल कर सामने जाते हैं और कहते हैं—'लो, चलाओ गोलियां।' उनकी उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता? मैं चाहता हूं कि उस वीर संन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे।

दिव्य गुण-आगार राष्ट्रपुरुष

—दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

□

"अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करता हुआ वैदिक धर्म और मातृभूमि की सेवा कर सकूं—"

२३ दिसम्बर १९२६, सायं ४ बजे नया बाजार, दिल्ली, स्थित तत्कालीन सार्वदेशिक सभा भवन में अध्यक्ष रूप से वहीं स्थिर रूप से निवास करते स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने शुद्धि सभा के मंत्री श्री चिदानन्द स्वामी को ये शब्द तब कहे जब वह शुद्धि सभा के प्रधान राजा रामपाल सिंह का स्वामी जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का आगरा से प्राप्त एक तार लेकर आये थे। इन शब्दों के उच्चारण के करीब पौन घण्टे बाद ही मतान्ध अब्दुल रशीद की तीन गोलियों का शिकार—पिछले लगभग तीन सप्ताह से रुग्ण और दिल्ली के प्रसिद्ध मुसलमान डाक्टर अंसारी के इलाज से कुछ लाभ प्राप्त—यह वृद्ध शेर संन्यासी इतिहास में यावच्चन्द्र दिवाकरौ अपना नाम शहीदों की प्रथम पंक्ति में स्वर्णाक्षरों में अंकित करा मोक्ष-धाम का यात्री बन गया था।

रामभक्त पिता के पुत्र

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से एक वर्ष पहले १८५६ में पंजाब के जालन्धर जिले के अन्तर्गत तलवन ग्राम में पुलिस अधिकारी ला० नानक चन्द के घर में जन्मे इस बालक का नाम जंत्री देखकर पौराणिक पंडित ने "बृहस्पति" रखा था। पर घरेलू नाम तो मुंशीराम ही था। पिता बनारस में शहर कोतवाल थे। बालक की शिक्षा पहले बनारस और बाद में इलाहाबाद में हुई। इलाहाबाद में पं० मोतीलाल नेहरू और मुंशीराम दोनों एक साथ सेन्ट्रल म्योर कालेज में पढ़ते थे सम्पन्न परिवार, पुलिस अधिकारी की सन्तान और युवा काल इन तीनों के मेल से मुंशीराम कुपथगामी हो गये। पर इनके पिता ला० नानकचन्द निष्ठावान् पौराणिक, रामभक्त और सजग कर्त्तव्यनिष्ठ थे। उनका कण्ठ स्वर बड़ा मधुर था। रात ९ से १० तक, नियमित रूप से, वह कोतवाली में तुलसी रामायण की कथा करते थे जिसमें पुलिस का सारा अमला और हवालाती कैदी भी शामिल होते थे।

रामायण के एक दोहे से जीवन बदल गया

नानकचन्द जी की इस कथा का कोतवाली के श्रोताओं पर कैसा प्रभाव पड़ता था—इसका एक आश्चर्यजनक उदाहरण स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है। लाला जी रामायण का वह अंश सुना रहे थे जिसमें गोस्वामी तुलसी ने बड़ी तड़प और उद्विग्नता के साथ अपने अपराधों के लिये प्रभु से क्षमा याचना की है। वह दोहा इस प्रकार है—

स्रवन सुजस सुन आयो, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि-त्राहि आरत तरन, सरन सुखद रघुवीर॥

इसी समय श्रोताओं में से एक व्यक्ति उठा और हाथ जोड़ बोला– मैं वह मुजरिम हूं जिसने आज से दो साल पहले एक कतल किया था। पुलिस तब से मेरी तलाश में है पर मैं अभी तक पकड़ा नहीं जा सका। आज आपके मुख से गोस्वामी जी की विनती सुनकर

अपने अपराध को स्वीकार करने और भगवान् से उसके लिए क्षमा मांगने के लिए अपने को कोतवाल साहब के सामने पेश करता हूं" सचमुच इस कातिल के लिये पुलिस कई महीनों से बड़ी परेशान थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं कि "इस आंखों देखी घटना का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा।"

उन्मार्गगामी मुंशीराम

बनारस और इलाहाबाद के असंगत जीवन ने मुंशीराम को एक दम अय्याश और नास्तिक बना दिया। एक ओर अंग्रेजी उपन्यासों का शौक, दूसरी ओर कालेज में पश्चिम के नास्तिक दार्शनिकों की शिक्षा—मिल, हक्सले, स्पेन्सर इत्यादि के उपयोगितावाद और अनीश्वरवाद के सिद्धान्त—साथ ही सब प्रकार की आर्थिक सुख-सुविधाएं और बुरी संगति— इन सबके फल स्वरूप मुंशीराम पतन के गर्त में गिरते चले गए। मद्य-मांस का सेवन तो साधारण बात थी। इसी स्थिति में मुंशीराम का विवाह हो गया था। उनके दिमाग में तो अय्याशी और अय्यारी के उपन्यासों की चुलबुलाती औरतों के जो नक्शे घर किए हुये थे, उसके एक दम विपरीत साधारण घरेलू लड़की—प्राइमरी तक ही, संभवतः पढ़ी हुई—उसे देख वह सर्वथा निराश हो गए। पर इस सती-साध्वी, सेवा भाव सम्पन्न, पति परायणा शिव देवी—पत्नी का यही नाम था— ने अपने अमूल्य, दुर्लभ गुणों से पति के हृदय और मस्तिष्क को शीघ्र ही प्रभावित कर दिया। शिवदेवी के दो उज्ज्वल व्यवहारों ने मुंशीराम को मद्यपान से मुक्त कर दिया। इन दिनों यह बरेली में थे।

अनपढ़ पतिपरायणा पत्नी के शब्द

एक दिन जब मुंशीराम मदहोश होकर आधी रात घर पहुँचे और रात भर वमन करते रहे, तब शिवदेवी ने पति से पहले स्वयं अन्न ग्रहण न करने की प्राचीन परम्परा के अनुसार भोर वेला तक निरन्तर जागते हुए सेवा की। प्रातः जब होश में आये और वमन से गन्दे हुए

कपड़ों को सामने पड़ा देखा—देवी ने इन्हें बदल साफ कपड़े पहना दिये थे—तब मुंशीराम बहुत लज्जित हुए। दूसरी घटना—मद्यपान से पारसी दुकानदार का काफी कर्ज चढ़ गया था। मुंशीराम के पास पैसे नहीं थे। वह बार-बार घर तकाजा करने आता। पति को निरंतर चिन्तित और क्षुब्ध देख पत्नी ने एक दिन पूछ ही लिया। मुंशीराम ने पत्नी से यह सब छिपाया हुआ था। पति को सब स्थिति अपनी पत्नी को बतानी पड़ी। शिवदेवी ने तत्क्षण अपने पीहर से प्राप्त सोने के दो कड़े उतार दिये। मुंशीराम ने दहेज में प्राप्त इन कड़ों को लेने में बहुत संकोच किया। पर पतिपरायणा देवी ने जब यह कहा "पति चरणों से अधिक मूल्यवान् क्या यह सोना कभी हो सकता है?" मुंशीराम ऋणमुक्त ही नहीं अपितु मद्य-मुक्त भी हो गए।

महर्षि दयानन्द का सत्संग—जीवन में क्रान्ति

पर नास्तिकता और पाश्चात्य चमक का प्रभाव अभी दिमाग पर हावी था। इन दिनों ला० नानकचन्द बरेली कोतवाल थे। मुंशीराम वहां आये हुए थे। इन्हीं दिनों महर्षि दयानन्द सरस्वती वहाँ पधारे। महर्षि के उपदेशों में सुरक्षा की व्यवस्था, सरकार की ओर से, नानकचन्द जी पर लगाये जाने से वह प्रतिदि र वहाँ जाते। महर्षि की तेजःपूर्ण दिव्य आकृति अगाध विद्या, निष्कलंक जीवन, प्रभावी भाषण शक्ति, ईश्वर-परायणता आदि गुणों से लालाजी अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने मुंशीराम को वहाँ सत्संग में जाने की प्रेरणा दी। युवक ने पिता जी से जब यह पूछा कि "क्या उन्हें अंग्रेजी आती है" और पिता के इस उत्तर से कि "अंग्रेजी तो शायद नहीं आती पर इस महात्मा की वाणी में अद्भुत रस और प्रभाव है और यह घंटों धाराप्रवाह संस्कृत में भाषण देते हैं," मुंशीराम ने निराशा के साथ कहा "भला संस्कृत बोलने वाले को क्या ज्ञान हो सकता है?" पर नानकचन्द जी प्रेरणा देते रहे। मुंशीराम अन्ततः गये।

महर्षि के अनूठे व्यक्तित्व और शिक्षाप्रद भाषण से मंत्रमुग्ध हो गये। उपदेश के बाद ऋषि चरणों में उपस्थित हुए। ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्धी शंकाएं रखीं। निरुत्तर हो मुंशीराम बोले "महाराज! आपके उत्तर से मेरी वाणी तो चुप हो गई है पर हृदय नहीं मानता।" ऋषिवर ने कहा—"युवक! जहाँ तक वाणी का सम्बन्ध है, तुम्हारी शंकाओं का निवारण मैंने कर दिया। हृदय में विश्वास तो प्रभु कृपा से ही होगा।" मुंशीराम ने दो रात लगातार जागकर, चुपके-चुपके, जासूसी की और इस महापुरुष के निवास स्थान पर छिप कर प्रातः काल तक उसके सारे कार्यकलाप को देखा। स्फटिकमणिवत् आपाद-मस्तक, अन्तः और बाह्य, दोनों प्रकार से विशुद्ध, सर्वथा निष्कलंक, शुभ्र जीवन से अत्यन्त प्रभावित हुए। पारस मणि से लोहा सोना बन जाता है—यह वस्तुतः होता है या नहीं पर यहाँ मुंशीराम के जीवन में आमूलचूल क्रान्ति हो गई। लोहा सोना ही नहीं कुन्दन बन गया। जीवन दिशा में प्रबल हड़कम्प। अब मुंशीराम महर्षि दयानन्द का अविचल भक्त और अनुयायी बन गया।

मुंशीराम ने लाहौर से वकालत पास की। यहीं वह आर्यसमाज में सक्रिय भाग लेने लगे। जालन्धर में वकालत प्रारम्भ की इस दृढ़ निश्चय के साथ कि "झूठे मुकद्दमे नहीं लूंगा"। आरम्भ में कुछ दिक्कत हुई पर बाद में तो वकालत खूब चमकी। तन, मन, धन से आर्य-समाज की सेवा में अर्पित हो गये। प्रभातफेरी, प्रत्येक परिवार में भोजन बनने से पूर्व एक मुट्ठी आटा मटकी में डालना—'हाँडी आटा कोष"—मुहल्ला प्रचार, पौराणिकों के साथ अनेक शास्त्रार्थ, प्रति सप्ताह ग्राम प्रचार, साप्ताहिक सत्संगों में भाषण, पारिवारिक सत्संग इत्यादि सामूहिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त घर में प्रतिदिन सन्ध्या, यज्ञ, स्वाध्याय—इत्यादि करते थे। इन्हीं दिनों पत्नी का देहान्त हो गया—दो पुत्र और दो कन्याएं छोड़कर। पत्नी ने मरते समय पति से दूसरे विवाह का आग्रह किया, आत्मीय जनों ने भी बहुत जोर दिया, पर मुंशीराम अपने निश्चय पर अटल रहे और दूसरा विवाह नहीं

किया। उन दिनों हिन्दुओं में बहुविवाह की आम प्रथा थी। अब जन-सेवा और आर्यसमाज के कामों में अधिक समय देने लगे। जालन्धर का आर्यसमाज पंजाब का अग्रगण्य समाज बन गया।

समाज सुधार क्षेत्र में सर्व प्रथम

मुंशीराम जी का जीवन कितना श्रेष्ठ और महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के अनुकूल था, इसका प्रमाण उनके समाज सुधार के क्षेत्र में, निर्भयता के साथ, साहसिक पग उठाने से, बिना आलोचना की परवाह किये, पता चलता है। आज जो बातें साधारण प्रतीत होती हैं, ७०-८० वर्ष पूर्व वह कल्पनातीत थीं। मुंशीराम जी ने अपने घर से ही पर्दा-निवारण, अपनी दोनों कन्याओं का जातपात तोड़कर, दोनों पुत्रों का बिरादरी से बाहर विवाह, लड़कियों की शिक्षा के लिये जालन्धर में कन्या पाठशाला की स्थापना – विरोध के बावजूद सबसे पहले अपनी दोनो पुत्रियों को पढ़ाना – यही कन्या पाठशाला बाद में उनके साले ला० देवराज जी के सहयोग से कन्या महाविद्यालय, जालन्धर" के रूप में भारत में अभी तक सुविख्यात है।

सामाजिक बहिष्कार में भी दृढ़

समाज सुधार की इस प्रकार की बहुविध प्रवृत्तियों का नेतृत्व करने के अतिरिक्त मुंशीराम जी ने शुद्धि का कार्य भी निर्भयता से किया। अछूत समझे जाने वाले रहतियों की जब शुद्धि की गई, तब एक ओर सिखों ने वावेला मचाया --क्योंकि रहतियों के सिर पर बाल थे जो कटवा दिए गये थे—और दूसरी ओर हिन्दुओं ने इन आर्यों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया। कुएं से पानी लेना, घर में काम करने वाली नौकरानी व नौकर, बाजार से सौदा लेना—इत्यादि सब इन आर्य पुरुषों के लिए बन्द हो गया। रोपड़ के पं० सोमनाथ की तो कुएं का पानी न मिलने और नहर का पानी पीने से हैजे के रोग के कारण मृत्यु भी हो गई। पर मुंशीराम जी के नेतृत्व में सब आर्य पुरुष दृढ़ रहे और अन्त में इन्हीं की जीत हुई।

साप्ताहिक उर्दू पत्र एक रात में ही हिन्दी में

मुंशीराम जी उर्दू में " सद्धर्म प्रचारक" साप्ताहिक पत्र निकालते थ । इसी पत्र के द्वारा पंजाब और उससे बाहर भी अनेक व्यक्ति आर्य समाजी बने । पर ऋषि दयानन्द तो हिन्दी के सर्व प्रथम प्रचारक थे । संस्कृत के महाविद्वान् होते हुए भी उन्होंने समस्त ग्रन्थ "आर्यभाषा" में ही लिखे । ऋषि हिन्दी को "आर्यभाषा" कहते थे और प्रत्येक आर्य के लिए इसका ज्ञान अनिवार्य घोषित करते थे । ऋषि के सच्चे और अनन्य शिष्य के रूप में मुंशीराम जी भला कब इस आज्ञा की उपेक्षा कर सकते थे ? उन्होंने रातों-रात इसे हिन्दी में कर दिया । उर्दू का प्रचार अधिक होने से पत्र घाटे पर चलने लगा पर मुंशीराम जी ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की । पर यह विपरीत स्थिति कब तक सहन की जा सकती थी ? जालन्धर से गुरुकुल कांगड़ी और वहां से दिल्ली—इसके बाद यह पत्र काल ग्रस्त हो गया । मुंशीराम जी अपना सारा पत्र व्यवहार हिन्दी में ही करते थे ।

मुंशीराम से महात्मा मुंशीराम

इस समय मुंशीराम जी आर्यसमाज के मूर्धन्य नेता, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान और वकालत का धन्धा बन्द कर अहर्निश आर्यसमाज की सेवा में जुट गए थे । आर्यजनता ने, स्वतः ही मुंशीराम जी को "महात्मा मुंशीराम" के नाम से अलंकृत कर दिया । आर्य प्रतिकिधि सभा, पंजाब के इतिहास में इस अवधि को "महात्मा मुंशीराम युग" कहा गया है जो सब ओर से देदीप्यमान है ।

गुरुकुल स्थापना का निश्चय

महात्मा मुंशीराम की राष्ट्र को सबसे बड़ी देन "गुरुकुल" है । महर्षि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का प्रतिदिन स्वाध्याय करते हुए मुंशीराम जी ने जब दूसरे समुल्लास में यह पढ़ा कि बालक बालिकाओं की शिक्षा आबादी से बाहर एकान्त स्थान में पृथक्-पृथक्

कम से कम पाँच मील दूर होनी चाहिए, तब महात्मा जी ने इसी प्रकार का गुरुकुल स्थापित करने का निश्चय किया। वेद में प्रभु आदेश देते हैं कि—

> ओ३म् उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् ।
> धिया विप्रो अजायत ।। यजु० २६।१५

पर्वतों के शिखरों और नदियों के संगम पर विद्वान् अपनी बुद्धि से उन्नति को प्राप्त करते हैं। इसके अनुसार महात्मा जी ने हरिद्वार के गंगा तट के पार—लगभग ६ मील दूर हिमालय की पहाड़ियों की तराई में घने जंगल के मध्य—जाह्नवी के किनारे—गुरुकुल खोलने का निश्चय किया। दृढ़ निश्चयी व्यक्ति की सहायता के साधन प्रभु कृपा से स्वतः उपस्थित हो जाते हैं। इस भूमि और उसके साथ लगे कांगड़ी ग्राम के मालिक बिजनौर निवासी मुंशी अमन सिंह जी ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। उन्होंने स्वतः ही सद्धर्म प्रचारक में पढ़ कर कांगड़ी ग्राम सहित समस्त विशाल भूमिखंड गुरुकुल की स्थापना के लिए दान कर दिया।

गुरुकुल के लिए सर्वस्व त्याग

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा गुरुकुल की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया पर साथ ही इस के विरोधी भी खड़े हो गये। सबसे अधिक विरोध और इसका मजाक आर्य समाजियों द्वारा ही हुआ। विरोध में दो आक्षेप विशेषरूप से किये गये। पहला—कौन अपने लाडले बच्चों को मां बाप से अलगकर जंगल में १४ वर्ष के लिए संस्कृत-हिन्दी पढ़ाकर बुद्ध बनाने के लिये भेजेगा। दूसरा—इस संस्था के लिए धन कहां से आएगा ? पर दयानन्द की शुभ्र ज्योति से एक चिनगारी प्राप्त अपने आत्मा को दीप्तिमान करने वाले मुंशीराम जी इन थोथी दलीलों से लक्ष्यच्युत होने वाले नहीं थे। सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि द्वारा उद्धृत इस नीति वचन के अनुसार कि—

> न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

"धर्म मार्ग से धीर पुरुष महान् संकट आने पर भी एक कदम भी विचलित नहीं होते।"—महात्मा मुंशीराम ने घोषणा की कि—

(१) इस गुरुकुल में सबसे पहले मैं अपने दोनों पुत्रों को प्रविष्ट करूंगा।"

(२) इस गुरुकुल के लिए जब तक ३० हजार रु० इकट्ठा नहीं कर लूंगा, तब तक घर में भोजन नहीं करूंगा—इस घोषणा के साथ ही महात्मा जी ने अपनी शानदार चलती वकालत को लात मार दी और अपनी बढ़िया कोठी, बग्घी, सद्धर्म प्रचारक प्रेस इत्यादि सर्वस्व गुरुकुल के लिए दान कर यह महापुरुष भिक्षा की झोली पसार सारे भारत की यात्रा पर एकाकी निकल पड़ा। सन्त कबीर के शब्दों में—

कबिरा खड़ा बाजार में लिये लुकाटी हाथ।
जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ॥

गंगापार घने जंगल में गुरुकुल की स्थापना—यज्ञ के साथ

इस प्रकार सर्वं वै पूर्णं स्वाहा—जीवन सहित सर्वस्व की पूर्णाहुति देकर, यह अनोखा व्यक्ति अपने गुरु दयानन्द के स्वप्नों को साकार करने और क्रूर विदेशी शासन के उन्मूलन तथा आर्य सभ्यता घातक पाश्चात्य शिक्षा प्रवाह की प्रबल धारा को उलटने के लिये १९वीं सदी के अन्तिम वर्ष फरवरी मास जालन्धर से १४ ब्रह्मचारियों और दो तीन सहयोगियों के साथ प्रस्थान कर हरिद्वार पहुंचा। गंगा-पार नगर से लगभग ६ मील दूर रेतीली भूमि और नील धारा को पारकर घने अरण्य में पवित्र यज्ञ, प्रार्थना और व्रत पालन की प्रतिज्ञा के साथ गुरुकुल की आधार शिला रखी गयी। महात्मा जी लगभग १६ वर्ष तक इस संस्था के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता रहे। गुरुकुल का सूत्रपात जहाँ कांटों-कंकड़ों और पत्थरों से भूमि में खोदे गये एक यज्ञ कुंड से हुआ था, वहां इन १६ वर्षों में विद्यालय

महाविद्यालय के अनेक भवन, आवास, आश्रम, अध्यापकों-कर्मचारियों के पृथक् निवास स्थान, भोजनशाला, भण्डार, वस्तुगृह, कार्यालय, उद्यान, खेल के मैदान, अतिथि शाला, चिकित्सालय, रोगी गृह, गौ-शाला, अश्व शाला, वाहन गृह, कृषि के लिये बीज, उपकरण इत्यादि और फसल की संभाल के लिये भंडार इत्यादि से आवेष्टित एक-मत्य और धर्म, सदाचार, बन्धुत्व, समभाव, पारस्परिक स्नेह, मैत्री, सहानुभूति इत्यादि सद्गुणों से भरपूर एक आर्य उपनगर बन गया था।

तिकोना संघर्ष

महात्मा मुंशीराम जी को इस अवधि में तिकोना संघर्ष करना पड़ रहा था। एक ओर गुरुकुल के विरोधी जहां आर्यसमाजी थे वहां दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों के प्रचार से विदेशी सरकार भी इस पर कड़ी नगर रख रही थी। उसे यह बताया गया कि गुरुकुल में बम बनते हैं, यहाँ के ब्रह्मचारी घोड़े पर चढ़कर दायें हाथ से लगाम संभालते हुए बायें हाथ से आकाश में उड़ते हुए पंछी को निशाना बनाकर गिरा देते हैं। पं० सातकलेवर जी के नाम वारंट लेकर पुलिस ने उनकी गिरफ्तारी राजद्रोह के अपराध में गुरुकुल भूमि से ही की। महात्मा जी के संघर्ष का तीसरा मोर्चा—गुरुकुल चलाने के लिए निरन्तर धनसंग्रह के वास्ते गुरुकुल से बाहर रहना पड़ता था। महात्मा जी ने तीनों मोर्चों का डटकर मुकाबला किया। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स मेस्टन, उसके बाद तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड, ब्रिटेन के मजदूर दल के नेता और बाद में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री राम्जे मैक्डानल्ड तथा अन्य कई ब्रिटिश-अमेरिकी यात्रियों व भारत के तत्कालीन अग्रगण्य शिक्षा विज्ञों व राजनीतिक नेताओं के स्वयं गुरुकुल आने और सब परिस्थिति आँकने के फलस्वरूप सरकारी सन्देह के बादल छँट गये। महात्मा जी के त्याग तपोमय जीवन

और उन दिनों आर्य समाज पर संकटों—जैसे पटियाला में आर्य समाजियों पर राजद्रोह का मुकद्दमा, धौलपुर में आर्यसमाज मन्दिर गिराकर टट्टियां बनाना—के अवसर पर महात्मा जी का निर्णय और आपत्ति के मुकाबले की हठ भावना—इन सबके फलस्वरूप जहां कुछ विरोधी आर्य समाजी निरस्त हो गये वहां महात्मा जी को कई सुयोग्य, लगनशील और निःस्वार्थ सहयोगी भी मिलते गये।

गुरुकुल भी राष्ट्र सेवा—गांधी जी गुरुकुल भूमि में

उस कठोर विदेशी शासन के युग में गुरुकुल ने अपने पूज्य आचार्य महात्मा मुंशीराम जी के नेतृत्व में जा राष्ट्र सेवा की और भारत को अनेक मौन, कर्मठ, लगनशील कार्यकर्त्ता दिये—वह इतिहास में सदा स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगी। गुरुकुल पहली संस्था थी जहां विज्ञान सहित समस्त विषयों की शिक्षा हिन्दी में ही दिये जाने के साथ प्राचीन वैदिक और संस्कृत वाङ्मय अतिरिक्त आधुनिक साहित्य और अंग्रेजी इत्यादि सबका पाठ्य क्रम में समावेश था और सब छात्र ब्रह्मचर्य, तपस्या, सादगी, शुद्ध खादी वस्त्र पहनते हुए, खान-पान-व्यवहार इत्यादि में बिना तनिक भी भेद भाव के एक साथ रहते थे। महात्मा जी स्वयं कट्टर देशभक्त और राष्ट्रसेवक थे और गुरुकुल भी इसी प्रकार की भावनाओं से आपूरित था। देश में जहां भी संकट आया—उड़ीसा, दक्षिण हैदराबाद में बाढ़, गढ़वाल में अकाल—ब्रह्मचारियों ने अपना एक समय का भोजन बन्दकर वहाँ धन भेजा। जिस समय गांधी जी ने द० अफ्रीका में सत्याग्रह किया, उस समय महात्मा जी के नेतृत्व में गुरुकुल के समस्त ब्रह्मचारी, अध्यापक और कर्मचारी हरिद्वार में सप्त सरोवर के पास बन रहे दूधिया बांधपर पत्थर ढोने और तोड़ने की मजदूरी पौष माघ मास की कड़ी सरदी के महीनों में—एक समय के भोजन त्याग के साथ—करते रहे। आचार्य जी भी हमारे साथ इस वृद्धावस्था में शामिल थे। इस प्रकार लगभग १५०० रु० इकट्ठा हुआ। महात्मा मुंशीराम जी जिस समय यह

राशि लेकर तत्कालीन कांग्रेसी नेता और भारत में इस आन्दोलन के संचालक श्री गोखले के पास पहुंचे और यह थैली भेंट की, तब श्री गोखले की आंखों से हर्ष की अजस्र धारा बह चली और वह अपनी कुर्सी से उछल कर महात्मा जी का स्नेहवश आलिंगन करते हुए बोले—"जिस धर्मयुद्ध में आप सदृश आचार्य और तपोनिष्ठ ब्रह्म-चारियों का ऐसा सहयोग है, उसकी विजय निश्चित है।" उस युग में श्रमदान का यह सजीव उदाहरण था।

जब महात्मा गांधी को द० अफ्रीका में श्री गोखले और श्री एंड्रूज द्वारा यह सब वृत्तान्त मिला, तब उन्होंने अत्यन्त प्रेम, नम्रता और श्रद्धा से पूर्ण पत्र महात्मा मुन्शीराम जी को लिखा। गाँधी जी जब भारत वापस आये तो बम्बई से सबसे पहले अरण्य स्थित गुरुकुल में पधारे और आचार्य जी को "बड़ा भाई" कह कर उनके चरणों का नम्रता से स्पर्श किया। उस समय गाँधी जी पूरी काठियावाड़ी पोशाक में थे और अभी "महात्मा" न कहे जाकर "कर्मवीर" की उपाधि से विख्यात थे। उनके नाम के साथ "महात्मा" विशेषण भी सबसे पूर्व आचार्य मुन्शीराम जी ने तब लगाया जब गांधी जी मायापुर (हरि-द्वार) वाटिका में आर्यसमाज के एक विशेष उत्सव में भाग लेने आये थे। गांधी जी गुरुकुल और महात्मा जी से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने फोनक्स आश्रम के सब बच्चों को—जिनमें उनका अपना लड़का देवदास गाँधी भी था—कई महीनों तक गुरुकुल में ही महात्मा जी की सेवा में रखा।

गुरुकुल के स्नातक—राष्ट्र की नींव के पत्थर

इस प्रकार महात्मा मुन्शीराम जी के आचार्य काल में गुरुकुल एक ऐसा चमकता सितारा था जिसका प्रकाश न केवल भारत किन्तु विदेशों में भी पहुँच रहा था। शिक्षा, राजनीति, समाज, साहित्य, राष्ट्रनिर्माण—इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में गुरुकुल एक नवयुग, एक नयी लहर और क्रान्ति का सन्देश लेकर, ऋषि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट

मार्ग पर सक्रिय पग बढ़ा रहा था। गुरुकुल के स्नातकों ने आर्यसमाज, देश विदेश में वैदिक धर्म के प्रचार, तत्कालीन स्वतन्त्रता आन्दोलन की समस्त प्रवृत्तियां, नमक सत्याग्रह, हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी साहित्य सृजन, हिन्दी पत्रकारिता, संस्कृत प्रचार इत्यादि विविध क्षेत्रों में जो प्रशस्त कीर्तिमान स्थापित किए, उन सबका श्रेय एक-मात्र महात्मा मुन्शीराम जी के तेजस्वी, निष्कलंक जीवन को ही है। क्या यह कम आश्चर्य का विषय है कि चारों ओर गहन अरण्य और हिंसक वन्य पशुओं से परिवेष्टित और गुरुकुल में एक सामान्य चिकित्सालय होने पर भी—उस गंगा पार संस्था में—जहाँ प्रत्येक ब्रह्मचारी शीत-उष्ण ऋतु में नंगे पाँव, नंगे सिर, सामान्य अंगरक्षक मात्र परिधान, पर्वत की तराई के असह्य शीतकाल में भी प्रातः सायं गंगा के शीतल जल में स्नान का अभ्यासी था—वहां उस सारी अवधि में केवल एक ब्रह्मचारी की मृत्यु हुई। गुरुकुल का वातावरण इतना पवित्र था कि वार्षिक उत्सव पर आये हजारों यात्रियों में से किसी की तिनके को भी चोरी नहीं होती थी, युवतियाँ निःशंक गुरुकुल भूमि में विचरती थीं और उत्सव की व्यवस्था के लिये एक भी पुलिस सिपाही की वहाँ आवश्यकता नहीं होती थी। संस्था के अनेक अध्यापक—प्राध्यापक, कर्मचारी व अन्य कार्यकर्ता सपरिवार आश्रम से कुछ दूर अलग बनाए गये मकानों में रहते थे, उनके परिवारों में कई युवती कन्याएँ, महिलाएं और युवक भी थे—पर क्या यह उस संस्थापक महापुरुष का जादू नहीं था कि कोई स्वप्न में भी किसी को दुर्दृष्टि से नहीं देखता था। गुरुकुल उपनगर में कभी चोरी नहीं हुई और न डाका पड़ा। छान्दोग्य उपनिषद् में राजा अश्वपति के इस कथन का कि—

> "न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न न मद्यपोः।
> नाना हिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः"

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कंजूस नहीं है, कोई मद्यप नहीं

है, कोई यज्ञ न करने वाला नहीं है, कोई मूर्ख नहीं है, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है तो व्यभिचारिणी कहां होगी ?—इस युग में इसे यदि कहीं चरितार्थ किया जा सकता था, तो वह गुरुकुल का उपनगर था जहां लगभए ३०० ब्रह्मचारी और १५० के लगभग आचार्यश्री से लेकर प्राध्यापक-अध्यापक सहित निम्न कर्मचारी और उनके परिवार तक सब रहते थे। आचार्य जी गंगातट पर एकान्त स्थान पर बनी एक कुटिया में एकाकी रहते थे। उनका पाचक धर्मसिंह कुटिया के अहाते में ही एक अलग कमरे में रहता था।

लेखक का आचार्य चरणों से सान्निध्य

हमने महात्मा मुन्शीराम जी और गुरुकुल के सम्बन्ध में इतने विस्तार से लिखा है। कारण—ब्रह्मचारी के रूप में वहाँ १५ वर्ष के निवास और आचार्य जी के अत्यन्त सान्निध्य में रहने के आधार पर और फिर संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के बाद जब स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में आप वहाँ दोबारा १९१९ में आये तब हमें उनके सम्पादकत्व में गुरुकुल से ही प्रकाशित "श्रद्धा" साप्ताहिक के उपसम्पादक के रूप में तथा स्वामी जी के निजी सचिव के रूप में कई मास तक सेवा करने का सौभाग्य मिला था। आज की पीढ़ी इस महापुरुष को "स्वामी श्रद्धानन्द" के रूप में—राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र के वरेण्य दृष्टिकोण से ही—प्रायः जानती है पर जीवन की नींव बाल्यकाल से प्रारम्भ कर मानव निर्माण तक और क्रूर विदेशी शासकों के पाशों से आबद्ध भारत माता की जंजीरों को मौन रूप से तोड़ने में आजीवन संलग्न उन अज्ञातनामा कर्मठ, धर्मनिष्ठ, सदाचारी और ऋषिभक्त व्यक्तियों को नहीं जानती जिन्हें इस महापुरुष ने ही वन में एकान्त साधना के साथ घड़ा और भारत माता के चरणों में अर्पित कर दिया था। आज जब कि "उन्मुक्त सेक्स" का अन्धाधुन्ध प्रचार किया जा रहा है और ब्रह्मचर्य, तपस्या, संयम, त्याग इत्यादि वैदिक जीवन के मूलभूत आधारों का मजाक किया जा रहा है तब "स्वामी

श्रद्धानन्द" से पहले "महात्मा मुन्शीराम" के जीवन को विशद रूप में प्रबलता से आज के आर्यसमाजियों—विशेषतः युवकोंके सम्मुख रखने की आवश्यकता है जो प्रायः इससे अनभिज्ञ हैं।

महात्मा मुंशीराम से श्रद्धानन्द—देश के मूर्धन्य नेता : दिल्ली की घटना

कुशल माली की तरह गुरुकुल-बीज के वपन के बाद उसे पूर्ण रूप से पल्लवित, पुष्पित, फलयुक्त वृक्ष का रूप देकर और सब प्रकाम से स्वावलम्बन और आत्म निर्भरता के शिखर तक पहुंचाकर उस समय की स्थिति के अनुसार, योग्य उत्तराधिकारियों को सौंप महात्मा मुन्शीराम ने १९१८ में "स्वामी श्रद्धानन्द" के रूप में चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया। राजनीतिक दृष्टि से इस समय देश में गांधी जी के नेतृत्व में विदेशी सरकार द्वारा नये गलाघोटू कानून "रौलेट एक्ट" के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। स्वामी जी ने दिल्ली को अपना केन्द्र बनाया और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष पद को संभालते हुए चालू राजनीति में वरिष्ठ नेता के रूप में जोरदार भाग लेना प्रारम्भ किया। उन दिनों स्वामी जी गाँधी जी के दायें हाथ थे। "सत्याग्रह प्रतिज्ञा पत्र" पर हस्ताक्षर सबसे पहले स्वामी जी ने ही किये। बम्बई से दिल्ली आते हुए गांधी जी की पलवल स्टेशन पर हुई गिरफ्तारी और रौलेट एक्ट के विरोध में दिल्ली में ३० मार्च १९१९ को जो आशातीत सफलता के साथ हड़ताल हुई, उसका सर्वाधिक श्रेय स्वामी जी को ही था। इसी दिन जामा मस्जिद के मिम्बर से भारत के इतिहास में पहली बार एक गैर-मुसलमान हिन्दू को वेद मंत्रों के साथ भाषण देने का सौभाग्य स्वामी जी को ही मिला। स्वामी जी उन दिनों दिल्ली के बेताज बादशाह थे। अदालतों में मुकद्दमे जाने बन्द होकर सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में ही स्वामी जी द्वारा निर्णय कराये जाते थे। कसाइयों ने गोहत्या सर्वथा बन्द कर दी थी। इसी दिन ३० मार्च को जब

स्वामी जी जामा मस्जिद से भाषण देकर लौट रहे थे और उनके पीछे हजारों की निहत्थी जनता आ रही थी, तब चांदनी चौक में घंटाघर के पास, गोरे सिपाहियों ने जनता को आगे बढ़ने से रोकते हुए, गोली चलाने के लिए जब बन्दूक तानी, तब स्वामी जी ने छाती खोल कर बन्दूक के सामने खड़े हो निर्भयता से कहा—

"इस निहत्थी जनता पर गोली चलाने से क्या लाभ ? मैं संन्यासी हूं। मेरी छाती खुली है। पहले इस पर गोली चलाओ।"

स्वामी जी के इन साहस पूर्ण शब्दों से गोरे सिपाही एकदम सहम गये। सारजैंट के आदेश से उनकी बन्दूक की नोकें नीचे हो गयीं और स्वामी जी शान्त जनता का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ गये।

अमृतसर काँग्रेस के स्वागताध्यक्ष—वेदमन्त्रों के साथ हिन्दी में भाषण

अप्रैल १९१९ में अमृतसर में क्रूर डायर के जलियांवाला हत्याकाण्ड और पंजाब के अनेक शहरों में लगे फौजी कानून के फलस्वरूप भयंकर अत्याचारों और अनेक व्यक्तियों के मारे जाने से सारा प्रान्त ओड्वायर की नादिरशाही से आतंकित था। काँग्रेस का इस वर्ष का अधिवेशन अमृतसर में ही होना था। पर प्रान्त के सब नेता तो जेल में बन्द थे। यह दायित्व कौन संभाले ? तब गाँधी जी और मोतीलाल नेहरू के विशेष अनुरोध पर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने यह कठोर दायित्व सँभाला। स्वामी जी ने स्वागत समिति के अध्यक्ष रूप से, धन, दिसम्बर की कड़ी सर्दी, फिर उन्हीं दिनों वर्षा, कार्यकर्ताओं की कमी इत्यादि बहुविध बाधाओं को दूर करते हुए इस अधिवेशन को इतना सफल बनाया कि यह एक ऐतिहासिक आयोजन का मूर्त रूप हो गया। समिति के अध्यक्ष के रूप में काँग्रेस मंच से पहली बार वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ हिन्दी में भाषण स्वामी जी महाराज का हुआ और इसमें यह प्रथम अवसर था जब अछूत समस्या का, सामाजिक और धार्मिक स्तर पर, समाधान करने का महत्त्व बताया गया

था। काँग्रेसी नेताओं ने इस समस्या को राजनीतिक तराजू पर तोला। यहां तक कि गांधी जी के दायें हाथ मौलाना मुहम्मद अली ने कोकनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए अछूतों को किसी जड़ जायदाद के रूप में हिन्दुओं और मुसलमानों में बांट देने का प्रस्ताव कर डाला था। १९२३ में पंजाब की नाभा रियासत के अन्तर्गत जैतों शहर में सिखों का ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा था। स्वामी जी ने इसका रुग्ण होते हुए भी नेतृत्व किया और ६ मास की जेल यात्रा की। इस प्रकार अमृतसर के पास गुरु का बाग सिखों के सत्याग्रह आन्दोलन में भी स्वामी जी ने भाग लिया।

कांग्रेस त्याग—शुद्धि-संगठन आन्दोलन का नेतृत्व

गांधीजी और कांग्रेस नेताओं की अत्यन्त मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति तथा मौलाना मुहम्मद अली-शौकत अली के दबाव में आकर हिन्दुओं के शुद्धि-संगठन आन्दोलन पर रोक लगाने के विरोध में स्वामी जी ने कांग्रेस से अपना सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद कर पूरी तन्मयता से शुद्धि और संगठन आन्दोलन में अपने को लगा दिया। स्वामी जी ने अनुभव किया कि बहुसंख्यक हिन्दू हैं और यदि यह बहुसंख्यक सम्प्रदाय निर्बल रहा और इसमें प्रवेश के लिए मनुष्य मात्र के लिए द्वार न खोले गये, तब इसका भविष्य निश्चय ही अन्धकारमय है। यह आन्दोलन किसी सम्प्रदाय विशेष के विरुद्ध न था पर कुछ मुल्ला-मौलवियों के मजहबी जोश और अंग्रेज सरकार की शरारत—इस आन्दोलन को मुस्लिम विरोधी समझ लिया गया। स्वामी जी के नेतृत्व में मलकाना राजपूत शुद्धि आन्दोलन बड़े उत्साह से चला। इन्हीं दिनों कराची की असगरी बेगम जो विवाहित और वयस्क आयु की थी अपने पिता के साथ स्वामीजी के पास हिन्दूधर्म में प्रविष्ट होने के लिये आयी। सारी कानूनी कार्यवाही के बाद इसकी शुद्धि कर "शान्तिदेवी" नाम रखकर एक सुयोग्य हिन्दू युवक से विवाह कर दिया गया। इस पर मुसलमानों ने होहल्ला मचा दिया। हिन्दुओं

कोमारने और जहाद करने के लिए मस्जिदों में आधी-आधी रात तक मुसलमानों की सभायें होने लगीं और गुप्त षड्यंत्र बनाये जाने लगे। हथियारों का प्रबन्ध किया गया। सरकार का इधर ध्यान खींचा गया। धमकी की चिट्ठियाँ स्वामी जी तथा अन्य हिन्दू नेताओं के पास आने लगीं। पर दिल्ली की मुस्लिम बहुसंख्यक पुलिस और सरकार चुप बैठी रही।

स्वामी जी मतान्ध की गोली के शिकार—वीरगति को प्राप्त

१९२६ के दिसम्बर में स्वामीजी उत्तर प्रदेश की प्रचार यात्रा से जब वापस आये, तब निमोनिया और ज्वर से पीड़ित हो गये। जहाँ एक ओर दिल्ली के प्रमुख और स्वामी जी के परम मित्र तथा घरेलू मुस्लिम डाक्टर अन्सारी के इलाज से उन्हें आराम आ रहा था, वहाँ दूसरी ओर उनकी हत्या करने वाला व्यक्ति भी मुसलमान था जिसका नाम अब्दुल रशीद था। कुछ शंका समाधान करने के बहाने यह हत्यारा २३ दिसम्बर, करीब दो बजे सार्वदेशिक सभा भवन में रुग्ण शय्या पर पड़े विश्राम कर रहे स्वामी जी के कमरे में जाने लगा और सेवक धर्मसिंह द्वारा रोका गया, और उसके यह कहने पर कि मैं कुछ सवाल पूछना चाहता हूं, तब स्वामी जी ने सुन लिया और उन्होंने उसे आ जाने के लिये आदेश दिया। कमरे में जाकर उसने पानी मांगा और धर्मसिंह साथ के कमरे से जब पानी लेने गया तत्काल उसने इस ७० वर्ष के वृद्ध, रुग्ण पर सिंह संन्यासी की छाती पर पिस्तौल से तीन गोलियां मारीं। स्वामीजी के मुख से प्रथम शब्द "ओ३म्" ही निकला और वह वीरगति को प्राप्त हो गये।

अभूतपूर्व शव यात्रा

२५ दिसम्बर को मोक्ष पद प्राप्त स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की जो शव यात्रा दिल्ली नगर में निकली, वह अभूतपूर्व थी। शव यात्रा का समूचा मार्ग और श्मशान भूमि लाखों शोकग्रस्त नर-

नारियों से भरी हुई थी। दिल्ली के इतिहास में ऐसी विशाल शव-यात्रा तब तक कभी नहीं निकली थी।

अद्वितीय हुतात्मा

इस प्रकार "महात्मा" रूप में समस्त आयु स्वतंत्र नवराष्ट्र निर्माण के लिये अहर्निश तत्पर और "परिव्राट्" के रूप में अन्त समय मातृभूमि की सेवा में भव्य बलिदान का मुकुट पहन यह वीर हुतात्मा भारत के इतिहास में अपना अमिट और दीप्तिमय स्थान छोड़ गया है। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के शब्दों में—

"स्वामी जी की हड्डियों से यमुना के तट पर एक ऐसा वृक्ष उत्पन्न होगा जिसकी जड़ें पताल तक पहुंचेंगी। शहीदों के रक्त से सदा नये शहीद पैदा होते हैं।"

आज के आर्य पुरुषों के प्रति

आर्य बन्धुओ! इस अद्वितीय परिव्राट् की अर्धबलिदान शताब्दी मनाते हुए जरा सोचो, हम उसके ऋण से मुक्त होने के लिए क्या कर रहे हैं? क्या आज आर्यसमाज में व्याप्त यादवी गृहकलह को तिलांजलि दे एक जुट हो कंधे से कंधा मिलाकर रणभेरी के साथ अग्रसर होने का समय नहीं आ गया है? कहीं इतिहास यह न कहे कि—

जमाना बड़े शौक से सुन रहा था।
तुम्हीं सो गये दास्तां कहते-कहते॥

और—

तूफाने नूह लाने से ऐ चश्म फायदा?
दो अश्क भी बहुत हैं, गर कुछ असर करें॥

सच्चे पिता

सोमदत्त विद्यालंकार

उस समय मैं गुरुकुल कांगड़ी में पांचवीं कक्षा में पढ़ रहा था। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव का पहला दिन था। हमारी कक्षा के अधिकतर छात्रों के माता-पिता अपने बच्चों से मिलने गुरुकुल पहुंच चुके थे। परन्तु मेरे सहपाठी विजय के पिता अभी नहीं आये थे। मध्याह्न-भोजन की घंटी बजने पर जब सब छात्र भोजनशाला में चले गये, तब आचार्य महात्मा मुन्शीराम जी (बाद के स्वामी श्रद्धानन्द जी) यह देखने आश्रम में आये कि कोई छात्र वहीं रह तो नहीं गया। हमारी कक्षा के कमरे में उन्होंने देखा कि एक छात्र धोती से मुंह ढके अपने तख्त पर लेटा है उसे उठाकर वे बोले—'क्यों विजय ! भोजन करने क्यों नहीं गये ?' फिर विजय की आंखों में आंसू देखकर पूछा—'तबीयत ठीक नहीं है ?' पर विजय कुछ उत्तर न देकर रोने लगा। महात्माजी उसके पास बैठ गये और प्यार से उसके सिर पर हाथ रख कर पूछने लगे—'क्या बात है, रोते क्यों हो ?' विजय ने सिसकियां भरते हुए कहा—'मेरे पिता जी नहीं आये······और सबके तो आ गये।'

महात्मा जी ने उसे पुचकार कर समझाया—'अरे अभी तो पहला दिन है। हो सकता है, वे शाम को या कल आ जायें।' आश्वस्त होकर विजय भोजन करने भोजनशाला में चला गया।

छात्रों का अपने संरक्षकों से मिलने का समय २ से ३ तक का निश्चित था। अभिभावक कार्यालय से 'आज्ञापत्र' लेकर अपने-अपने बच्चों को ले जाने आने लगे। कुछ समय बाद एक सेवक विजय के लिए भी आज्ञापत्र लेकर आश्रम में आया। विजय प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ चल पड़ा। सेवक उसे संरक्षकों के कैम्प के बजाय महात्जा जी के बंगले में ले गया, जहाँ महात्मा जी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विजय ने उनके चरण छूकर प्रणाम किया और पूछा—'मेरे पिता जी कहाँ हैं ?'

महात्मा जी ने उसे प्यार से बाहों में भरकर कहा—'क्या हम तुम्हारे पिता नहीं हैं ?' और उसे चटाई पर बैठा बड़े प्यार से अपने हाथ से उसे फल तथा मिठाई खिलाई।

महात्मा मुन्शीरामजी गुरुकुल में पढ़ने वाले सब बच्चों से माता-पिता की तरह प्यार करते थे। किसी भी छात्र के बीमार पड़ने पर वे नियमपूर्वक उसके पास बैठते, उसका मन बहलाते। बाल-मनोविज्ञान के वे बड़े पारखी थे।

●

महात्मा और ज्ञानी पुरुष

श्री चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य

स्वामी श्रद्धानन्द जी ज्ञानी और महात्मा थे। वे ज्ञानी की अपेक्षा महात्मा अधिक थे। उनका जीवन तथा प्राणोत्सर्ग धर्म और देश के लिए हुआ। मैं उस महान् आत्मा के प्रति कृतज्ञतापूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करता हूं।

With Best Compliments
From

M/s. Plastics and Chemical Coatings

WZ-8/1, Kirti Nagar, Industrial Area

NEW DELHI-110015

Manufacturers of :

Plastic peel (Protective coating material for tools and other equipments)

बलिदान अर्धशताब्दी

के उपलक्ष्य में

आर्य समाज नयाबांस, दिल्ली

के

तीन पुष्प

१. **ऐतिहासिक शास्त्रार्थ** (यह शास्त्रार्थ पं. व्यासदेव शास्त्री और पं. माधवाचार्य के बीच हुआ था।) मूल्य २॥)

२. **दयानन्द लहरी** (संस्कृत श्लोकों में महर्षि दयानन्द सरस्वती का गुणानुवाद) मूल्य ६० पैसे

३. **आर्य संगीत सागर** मूल्य २॥)

लाला मुंशीराम—जब वह महात्मा मुंशीराम के नाम से प्रसिद्ध नहीं हुए थे
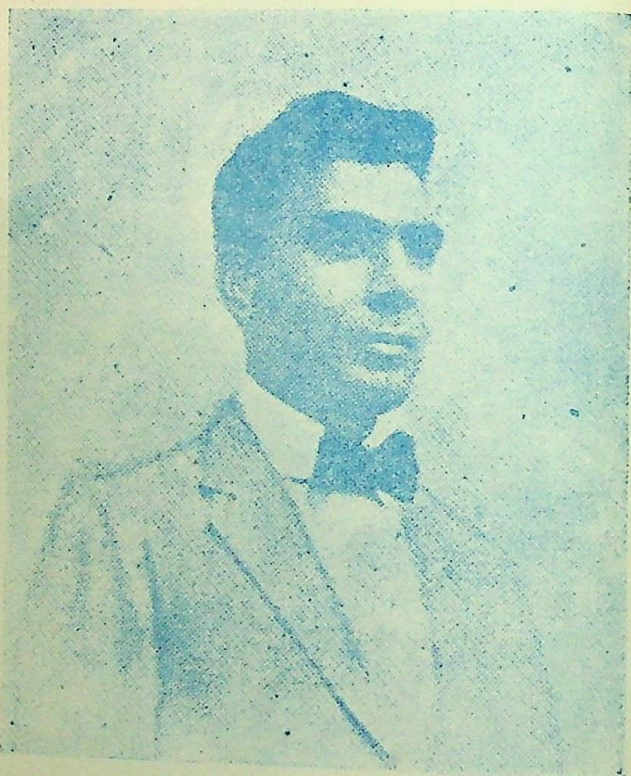
श्री हरिश्चन्द्र : स्वामी जी के ज्येष्ठ सुपुत्र, जो सन् १९१४ में विदेश गए और वहीं अज्ञात परिस्थितियों में देश पर न्यौछावर हो गए ।

आदर्श समाज-सुधारक

—क्षितीश वेदालंकार

□

आदर्श समाज-सुधारक कौन हो सकता है ? उसकी कसौटी क्या है ?

जो व्यक्ति अपने विचारों के अनुसार समाज को ढालना चाहता है उसे पहले अपने आप से और अपने परिवार से करनी चाहिए। जिस बात को कोई व्यक्ति स्वयं अपने आचरण में न उतार सके, उसे सदूरों से कहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। आचार के बिना प्रचार निरा दम्भ है और ऐसा प्रचार कभी कृतकार्य नहीं हो सकता। जिस व्यक्ति की कथनी और करनी में अन्तर ,है उसका समाज पर कभी स्थायी प्रभाव नहीं हो सकता। किसी व्यक्ति का निजी व्यक्तिगत जीवन उसकी वाणी से कहीं अधिक मुखर होता है। विचार के अनुकूल आचार और आचार के अनुकूल प्रचार ही समाज में सुधार ला सकता है। विचार-हीन आचार और आचार-हीन प्रचार कभी सफल नहीं हो सकता।

इस कसौटी पर कस कर देखें तो स्वामी श्रद्धानन्द जैसा आदर्श-समाज-सुधारक दुर्लभ है।

पहले विचार की बात लें—

जब महात्मा मुन्शीराम ने विधिपूर्वक संन्यास की दीक्षा लेते हुए भगवा वेष धारण किया और संन्यास-आश्रम में प्रवेश के लिए नये नाम का प्रसंग आया तब मुन्शीराम ने उस अवसर पर उपस्थित विशाल जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा था "मैं सदा-सदा निश्चय परमात्मा की प्रेरणा से श्रद्धापूर्वक ही करता रहा हूं। मैंने संन्यास भी श्रद्धा की भावना से प्रेरित होकर ही लिया है। इस कारण मैं 'श्रद्धानन्द' नाम धारण कर संन्यास आश्रम में प्रवेश करता हूं। आप सब नर-नारी प्रभु से प्रार्थना करें कि वे मुझे अपने इस नए व्रत को पूर्णता से निभाने की शक्ति दें।"

इक शब्दों में स्वामी श्रद्धानन्द का पूरा जीवन-दर्शन आ गया है।

श्रद्धा का अंकुर

प्रश्न यह है कि अपने यौवन के प्रारम्भ में अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से जो व्यक्ति नास्तिकता के प्रवाह में बहा चला जा रहा था, विज्ञान ने जिसे श्रद्धा से अन्धविश्वास कहना सिखाया था और युग-बोध ने जिसके मस्तिष्क को तर्क-प्रवण बना दिया था, कुसंगति के प्रभाव से जो व्यक्ति अनाचार और सदाचार की दिशा में द्रुत गति से भगा जा रहा था, अकस्मात् उसके हृदय में ईश्वर के प्रति यह श्रद्धा और विश्वास कैसे पैदा हो गया ?

नीतिकार कहते हैं—

यौवन धन सम्पत्तिः प्रभुत्त्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

यौवन, धन-सम्पदा, राजसत्ता और अज्ञान—इनमें से प्रत्येक जीवन को अनर्थ की ओर ले जाने के लिए पर्याप्त हैं, फिर जब ये चारों ओर एकत्र हो जाएं तो कहना ही क्या ? मुन्शीराम के पास अंधी जवानी थी, धन और विलास में साधनों की कमी नहीं थी, पिता पुलिस के बड़े अधिकारी थे इसलिए सत्ता के मद का ठिकाना नहीं, और इन सबके साथ जब मिल गया अंग्रेजी के उपन्यासों के वासना-प्रधान मानसिक वातावरण से उत्पन्न अज्ञान, तब फिर कुपथ पर सरपट भागने में कसर ही क्यों रहती ?

इसमें रुकावट आर्य-ऋषि दयानन्द के साक्षात्कार से। बरेली में जहाँ पिता कोतवाल के रूप में नियुक्त थे, मुन्शीराम को उस अद्वितीय बालब्रह्मचारी के न केवल दर्शन का अवसर मिला, प्रत्युत उसके ओजस्वी और तर्क-संगत भाषण सुनने का भी अवसर मिला परन्तु अन्धकार के गर्त में गिर मुन्शीराम को केवल प्रकाश की किरण के दर्शनमात्र से सन्तोष नहीं हुआ। तब वार्तालाप किया, अपने मन के सब संशय और तर्क-वितर्क ऋषि के सामने उपस्थित किए। ऋषि ने अपने अद्‌भुत पाण्डित्य और चमत्कारिणी प्रतिभा से न केवल मुन्शीराम की सब शंकाओं का समाधान कर दिया, बल्कि मुन्शीराम के दिल और दिमाग पर जैसे जादू कर दिया। यह जादू कैसा था, इसका उल्लेख स्वामी श्रद्धानन्द ने 'कल्याण मार्ग के पथिक' नामक अपनी जीवनी की भूमिका में निम्न शब्दों में किया है—

"ऋषिवर! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे ४१ वर्ष हो चुके, परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय-पटल पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरण-मात्र ने मेरी आकस्मिक रक्षा की है। परमात्मा के बिना कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में कह सकता हूं कि तुम्हारे सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठा कर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया?"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वामी श्रद्धानन्द के नास्तिक और तार्किक जीवन में यदि श्रद्धा का समावेश हुआ तो उसका श्रेय महर्षि दयानन्द को है। दिव्य देव दयानन्द ने ही स्वामी श्रद्धानन्द के मन में वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया था।

विचार के बाद अब लीजिए आचार की बात।

ऋषि दयानन्द ने स्वामी श्रद्धानन्द के मन में पुराने विचारों के स्थान पर जिन नये-नये विचारों को जन्म दिया, उन्हें स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने घर और

परिवार में किस प्रकार आचारित किया उसके लिए उनके जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा।

मुन्शीराम की छोटी बच्ची थी वेदकुमारी। उस समय के सम्भ्रान्त लोगों की परम्परा के अनुसार उस बच्ची को क्रिश्चियन स्कूल में दाखिल करवाया गया। एक दिन वह बच्ची अपने स्कूल में एक गीत सीख कर आई और घर में अपनी माता को तथा अन्य रिश्तेदारों को प्रसन्नता पूर्वक वह गीत सुनाने लगी। शाम को मुन्शीराम घर पहुंचे तो बच्ची ने उन्हें भी वही गीत सुनाया। गीत था : "ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल" इस गीत को सुनकर पिता के कान खड़े हो गये। उस दिन यह निश्चय कर लिया कि विधर्मियों के संस्कारों से अपने बच्चों को बचाने का केवल एक ही उपाय है और वह है अपनी पाठशालाएँ खोलना। उसके बाद अपने सम्बन्धी और उत्साही सामाजिक कार्यकर्त्ता लाला देवराज के साथ मिल कर कन्या पाठशाला की स्थापना की जो बाद में विकसित होकर आर्य कन्या महाविद्यालय जालन्धर के नाम से विख्यात हुआ। आर्यसमाज द्वारा स्त्री-शिक्षा के लिए उठाया गया यह पहला कदम था जिसकी मुन्शीराम के घर से हुई।

रहतियों की शुद्धि

मुन्शीराम जिस समय आर्यसमाज जालन्धर के प्रधान थे, उन दिनों की बात है। रहतियों की गिनती अछूतों में की जाती थी। आर्यसमाज सिद्धान्त रूप से छूआछूत को नहीं मानता था, परन्तु तब एक आर्यसमाज की ओर से भी छूआछूत को दूर करने के लिए कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया गया था। मुन्शीराम ने लगभग दो सौ रहतियों को समाज-मन्दिर में शुद्ध करके आर्यसमाज में शामिल कर लिया। उपस्थित सभासदों ने उनके हाथ से हलुआ खाया और पानी पिया। हिन्दू जाति के लिए यह एक नई चीज थी। पौराणिक पण्डितों ने जनता को खूब भड़काया और बहुत से आर्यसमाजियों को बिरादरी से खारिज किया गया। दलितोद्धार की दिशा में यह प्रथम संगठित प्रयत्न था। परन्तु उस समय इस घटना ने कितनी उत्तेजना पैदा की होगी, इसकी कल्पना एक और स्रोत से की जा सकती है।

उन्हीं दिनों 'ट्रिब्यून' अखबार में एक खबर छपी थी। उस खबर का सार यह था : जालन्धर की हिन्दू जनता ने रहतियों की शुद्धि से विक्षुब्ध होकर आर्यसमाज के प्रधान लाला मुन्शीराम के मकान पर चढ़ाई कर दी, उनको पकड़ लिया और घसीट कर समाज मन्दिर में ले आये। वहाँ ले जाकर उन्हें रस्सियों से बांध दिया गया और एक पीपल के पेड़ पर लटका दिया गया।

इस खबर से आर्य जगत् में तहलका मच गया। मुन्शीराम के घर में असलियत जानने के लिए उनके हितैषियों का जमघट लग गया और उनका कुशल-क्षेम जानने के लिए बाहर से तार पर तार आने लगे। बाद में समाचार बड़ी बारीकी से पढ़ने पर पता लगा कि 'ट्रिब्यून' के सम्पादक ने यह 'अप्रैल फूल' का मजाक किया था।

घठना बेशक गलत थी। पर जनता ने उस पर विश्वास इस कारण किया कि रहतियों की शुद्धि के कारण उत्पन्न उत्तेजना से इस प्रकार की घटना चाहे जब घट सकती थी।

विधवा विवाह

आज के युग में विधवा विवाह आम है, पर जिस युग की बात हम कह रहे हैं उस समय हिन्दुओं के लिए तो क्या, आर्यसमाजियों के लिए भी वह एक नई और साहसिक चीज थी।

सुमित्रा नाम की एक ईसाई कन्या बचपन में ही विधवा हो गई। इसे अपशकुन मान कर उसे पितृ-कुल और पति-कुल दोनों ने त्याग दिया। बिचारी कहाँ जाए ? तब मुन्शीराम ने उसे अपने परिवार में शरण दी। अपने बच्चों के समान उसका लालन-पालन किया, उसे शिक्षा दी और बाद में विवाह-योग्य आयु हो जाने पर गुरुदत्त के साथ, जो बाद में स्वामी आत्मानन्द मुमुक्षु के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी कोठी पर ही लड़की के पिता बन कर वैदिक विधि से विवाह सम्पन्न करा दिया। इस विवाह का परिवार के बाहर जितना विरोध हुआ, उससे अधिक परिवार के अन्दर विरोध हुआ। विधवा-विवाह के

इस प्रसंग के कारण मुन्शीराम के सुसराल वालों ने खिन्न होकर उनसे एक तरह से सम्बन्ध-विच्छेद ही कर लिया और बड़े भाई तथा बड़ी भाभी ने घर में जो कोहराम मचाया सो अलग। अपने सगे-सम्बंधियों के इस विरोध के कारण मुन्शीराम भी कम मर्माहत नहीं हुए, परन्तु अपनी अदम्य सिद्धान्त-निष्ठा के कारण वे अपने निश्चय से विरत नहीं हुए। आर्य जगत् में कदाचित् यह पहला विधवा-विवाह था।

अन्तर्जातीय विवाह

ऋषि दयानन्द ने गुण-कर्म के अनुसार वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन किया है। सब आर्यसमाजी इसे सिद्धान्त रूप से स्वीकार भी करते हैं। पर आज तक वे जाति-पांति के वन्धन से कहां निकल पाए हैं ?

मुंशीराम की दूसरी लड़की थी हेमकुमारी—जिसका बाद में अमृतकला नाम रखा गया। जब वह विवाह योग्य आयु में पहुंची, तब मुंशीराम ने जन्म-जाति को तिलांजलि देकर गुणकर्मानुसार उसका विवाह करने का निश्चय किया।

तब तक आर्यसमाजियों के लिए भी यह बात कल्पनातीत थी। उस अवसर पर सनातनियों ने जितना विरोध किया, उससे बढ़ कर विरोध आर्यसमाजियों ने किया। और तो और बच्छोवाली आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर जो उस युग का सर्वप्रमुख और सर्वप्रसिद्ध आर्यसमाजी समारोह माना जाता था, मुन्शीराम पर आर्यनेताओं ने सार्वजनिक रूप से 'अत्याचारी', 'यश-लोभी', 'निर्मोही' 'नृशंस', 'लड़की के जीवन से खिलवाड़ करने वाला' 'पिता होकर अपनी लड़की को अपने हाथों से कुएं में ढकेलने वाला', आदि शब्दों से उनकी भर्त्सना की। मुंशीराम ने उन आक्षेपों के उत्तर में इतना ही कहा "मैं तो ऋषि दयानन्द के वचनों पर श्रद्धा रखता हूं। ऋषि ने जन्मना जाति का खंडन करके कर्मणा जाति का मण्डन किया है। मैं इसी सिद्धान्त पर चलने का प्रयत्न कर रहा हूं। आप भले ही मेरा तिरस्कार कर दें पर मैं ऋषि के वचन का तिरस्कार नहीं करूंगा।"

और महात्मा मुंशीराम ने अपनी लड़की अमृतकला का डॉ० सुखदेव नामक युवक से विवाह करके देश में अन्तर्जातीय विवाह की परम्परा का श्रीगणेश कर ही दिया। डॉ: सुखदेव अत्यन्त ईमानदार, सच्चरित्र, समाजसेवी और राष्ट्रभक्त युवक थे और बाद में स्वतन्त्र्य संघर्ष के दिनों में वे कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में एक बार राष्ट्रपति भी बने थे।

गुरुकुल का संकल्प

स्वामी श्रद्धानन्द के नाम के साथ गुरुकुल कांगड़ी का अविनाभाव सम्बन्ध है पर गुरुकुल कांगड़ी के जन्म से पहले मुंशीराम ने जिस दृढ़ संकल्प का परिचय दिया वह भी अद्भुत था। यदि संकल्प की यह दृढ़ता न होती तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार सम्भव नहीं था। ऋषि दयानन्द के वचन में श्रद्धा के कारण ही मुंशीराम के मन में गुरुकुल की स्थापना के स्वप्न ने जन्म लिया था। उस दृढ़ सकल्प की द्योतक घटना भी सुनिए—

मुंशीराम आर्यसमाज के काम से तथा अपनी वकालत के सिलसिले में जब कभी जालन्धर से बाहर जाते तब दो-तीन दिन बाद लौट आते थे और जाने से पहले अपने लौटने की गाड़ी की सूचना दे जाते थे। यथा समय घोड़ा गाड़ी स्टेशन पहुंच जाती थी। उस बार भी बग्घी स्टेशन पर पहुंच गई, पर जब वह घर पहुंची तो मुंशीराम उसमें नहीं थे। कोचवान ने बताया कि बाबू जी ने रास्ते में अपना सामान समाज मन्दिर में ही उतरवा लिया है और स्वयं भी वहीं रुक गए हैं।

मुंशीराम की पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था। बच्चे छोटे थे, इसलिए बड़ी भाभी अपने पति के साथ तलवन से आकर जालन्धर रहने लगी थी और वही बच्चों तथा घर की देखभाल करती थी। उसने समझा कि मुंशीराम किसी कारण घर से नाराज हो गए हैं और इसीलिए घर नहीं आये हैं। वह सब बच्चों को अपने साथ लेकर समाज मन्दिर में गई। मुन्शीराम ने अपनी भाभी से कहा— "मैंने लाहौर में प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक गुरुकुल की स्थापना के लिए तीस हजार रु० एकत्र नहीं कर लूंगा, तब तक घर में कदम नहीं रखूंगा।

इसोलिए समाज मन्दिर में डेरा डाल दिया है।" और सचमुच मुंशीराम ने लगातार छः मास तक समाज मन्दिर में ही निवास किया जब तक स्थान-स्थान का दौरा करके तीस हजार से अधिक राशि एकत्र नहीं कर ली।

तीस हजार की यह राशि आज सामान्य लग सकती है, पर आज से सौ साल पहले रुपये के मूल्य की दृष्टि से उसका आकलन किया जाए तो वह राशि तीस लाख के लगभग बैठेगी। जिस युग में आर्यसमाज का इतना विस्तार नहीं हुआ था और गुरुकुल के नाम से भी कोई परिचित नहीं था, तब अकेले दम इतनी बड़ी राशि एकत्र करने के लिए मुंशीराम को कितना कठोर परिश्रम करना पड़ा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। दृढ़ संकल्प के बिना सम्भव नहीं था।

"उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्" के वैदिक आदर्श के अनुसार हिमालय पर्वत की उपत्यका में भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके उसको पुष्पित-पल्लवित करने और फलवान् वृक्ष बनाने के लिए महात्मा मुंशीराम ने जिस एकाग्र चित्त से तपस्या की, वह भी अद्भुत है। सबसे पहले अपने दोनों पुत्र गुरुकुल की भेंट किए, अपनी वकालत और अपना जीवन भेंट किया, अपना प्रेस और सद्धर्म प्रचारक पत्र भेंट किए, अपनी सारी सम्पत्ति भेंट की और अन्त में जालन्धर स्थित अपनी विशाल कोठी भी। अपने प्रिय गुरुकुल को चरितार्थ करने के लिए सर्वमेध यज्ञ करके मुंशीराम स्वयं निःस्व बन गए और अपने पुत्रों के लिए उत्तराधिकार के नाम पर कोई चीज नहीं छोड़ी।

समाज सुधारक तो और भी अनेक हुए हैं, पर इस प्रकार अपने मन-वचन-कर्म में एकरूपता प्रकट करने वाला, विचार-आचार-प्रचार में सामंजस्य स्थापित करने वाला, कथनी और करनी के भेद को सर्वथा समाप्त कर देने वाला और अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देने वाला व्यक्ति दुर्लभ है। इसीलिए हमने स्वामी श्रद्धानन्द को आदर्श समाज सुधारक कहा है।

●

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब

आगामी ऋषिबोधोत्सव के अवसर पर

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

अमर कृति

"मेरे पिता : संस्मरण"

प्रकाशित कर रही है।

मूल्य केवल तीन रुपये

अपना आदेश तुरन्त भेजें

प्रकाशन विभाग

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब

वर्तमान कार्यालय—आर्यसमाज वेद मन्दिर,
भार्गव नगर, जालन्धर

निर्भीक महान् सुधारक

□

[२३ दिसम्बर १९२६ को रोग शय्या पर पड़े स्वामी जी की एक धर्मान्ध मुसलमान द्वारा हत्या कर दी गई । इस दुर्घटना से सम्पूर्ण भारतवर्ष रोष व क्रोध से काँप उठा । उस अवसर पर महात्मा गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' के ६ जनवरी १९२७ के अंक में यह लेख प्रकाशित किया । इस में स्वामी जी के महान् व्यक्तित्व तथा हृदय की उदारता पर प्रकाश डालते हुए आप ने अपने संस्मरण प्रस्तुत किये—सम्पादक ।]

जिस बात की सम्भावना थी, वही हुई । आज से लगभग ६ मास पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द जी साबरमती में एक-दो दिन ठहरे । बातचीत के प्रसंग में उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास प्रायः ऐसे पत्र आते रहते हैं जिन में उन्हें कत्ल करने की धमकी दी होती है । ऐसा कौन सा देश है, जहाँ के सुधारक को अपने लक्ष्य के लिए प्राणों की बाजी नहीं लगानी पड़ी ?

स्वामी जी एक सुधारक थे । वह वाक्शूर नहीं, कर्मशूर थे । उनका विश्वास जीवित जागृत था । उसी के कारण उन्हें यह विपत्ति

झेलनी पड़ी । वह वीरता की साक्षात् मूर्ति थे । उन्होंने आपत्ति में भी कभी साहस नहीं खोया । वह एक योद्धा थे और एक योद्धा रोग-शय्या पर नहीं परन्तु लड़ाई के मैदान में मरना पसन्द करता है ।

प्रभु उनके लिए एक शहीद की मृत्यु की कामना करते थे । इस लिये रोग शय्या में पड़े रहने पर भी एक हत्यारे के हाथों उनकी मृत्यु हुई । गीता के शब्दों में—"सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥"

मृत्यु एक वरदान है । परन्तु उस योद्धा के लिये वह दुगुना वरदान है जो अपने लक्ष्य तथा सत्य के लिए प्राण दे देता है । यह मृत्यु कोई भयंकर दैत्य या पिशाच नहीं । वह सब से अधिक सच्चा मित्र है । वह हमें कष्टों से मुक्त करता है । हमारी इच्छा न होते हुए भी वह वस्तुतः हमारा सहायक होता है । वह सदा हमें नये अवसर और नई आशाएं प्रदान करता है । यह मृत्यु निद्रा के समान मधुर नवजीवन प्रदान करती है । फिर भी मित्र की मृत्यु पर शोक का रिवाज चल पड़ा है । परन्तु शहीद की मृत्यु पर इस प्रकार के रिवाज का कोई महत्त्व नहीं रह जाता । इसलिये मुझे उनकी मृत्यु पर कोई शोक नहीं । मुझे तो उनसे तथा उनके स्वजनों से ईर्ष्या होती है । क्योंकि यद्यपि स्वामी जी की देहलीला समाप्त हो गई, तथापि वह जीवित हैं । वह उस समय की अपेक्षा अब अधिक सच्चे अर्थ में जीवित हैं, जब वह अपनी विशाल काया के साथ हमारे बीच विचरण किया करते थे । ऐसी शानदार मृत्यु के कारण वह देश जिसमें उन्होंने जन्म लिया और वह राष्ट्र जिससे उनका सम्बन्ध था, वस्तुतः बधाई के पात्र हैं । वह सम्पूर्ण जीवन एक वीर की तरह जीये और अन्त में वीर की तरह ही उनकी मृत्यु हुई ।

मेरा स्वामी जी से प्रथम परिचय तब हुआ, जब वह महात्मा मुंशीराम थे और वह भी पत्र द्वारा । उस समय वह गुरुकुल कांगड़ी के—जो शिक्षा क्षेत्र में उनकी एक मौलिक महान् देन है—मुख्या-

धिष्ठाता थे। वह पश्चिम की प्रचलित पद्धतियों से सन्तुष्ट न थे। वह अपने देश के बच्चों को वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित कर देना चाहते थे वह उन्हें अंग्रेजी से नहीं, प्रत्युत हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देते थे वह चाहते थे कि उनके शिष्य शिक्षाकाल में सदा ब्रह्मचारी रहें। उन्होंने अपने ब्रह्मचारियों को दक्षिण अफ्रीका में चल रहे सत्याग्रह की सहायतार्थ एकत्र किये जा रहे चन्दे में अपना योगदान करने के लिये प्रेरणा की थी। उनकी इच्छा थी कि इस कार्य के लिये उन के ब्रह्मचारी मजदूरी करने वाले कुलियों की तरह कठोर परिश्रम करें और यह उचित ही था। क्योंकि क्या यह सत्याग्रह कुलियों का नहीं था? ब्रह्मचारियों ने समय की मांग को समझा और मेहनत मजदूरी कर के जो धन कमाया, स्वामी जी ने वह मेरे पास भेज दिया। इस विषय में उन्होंने हिन्दी में लिखा हुआ एक पत्र भी मुझे भेजा। उस पत्र में उन्होंने मुझे "मेरे प्यारे भाई" कर के सम्बोधित किया था। इस घटना ने मुझे महात्मा मुंशीराम जी का प्रिय मित्र बना दिया। इस से पूर्व हम दोनों कभी नहीं मिले थे।

श्रीयुत ऐण्ड्रूज महोदय ने हम दोनों के बीच कड़ी का काम किया। वह इस बात के उत्सुक थे कि मैं जब कभी अपने देश (भारत) में वापस जाऊं तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रिंसिपल रुद्र तथा महात्मा मुंशीराम से—जिन्हें मैं उनकी त्रिमूर्ति कहा करता था—अवश्य परिचय प्राप्त करूं। स्वामी जी के उक्त पत्र मिलने के बाद से हम दोनों सगे भाई बन गये। सन् १९१५ में गुरुकुल कांगड़ी में हम दोनों परस्पर मिले और प्रत्येक मिलन में हम निकट से निकटतर हो गये और एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे। उनका प्राचीन भारत, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के प्रति विलक्षण प्रेम था। इसमें संदेह नहीं कि वह इस असहयोग आन्दोलन के जन्म से भी पूर्व असहयोगी थे। वह स्वराज्य प्राप्त करके के लिए अत्यन्त आतुर थे। उन्हें अस्पृश्यता से घृणा थी और वह इन अस्पृश्यों की

दशा सुधारने के लिए सदा उत्सुक रहते थे। वह इन की स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकते थे।

जब देश में रौलट एक्ट विरोधी आन्दोलन छिड़ा, उस समय वह उस का स्वागत करने वाले अग्रणी पुरुषों में से एक थे। उन्होंने एक अत्यन्त उत्साहवर्धक पत्र मुझे लिखा। परन्तु अमृतसर तथा वीररम गांव की दुर्घटनाओं के कारण जो मुझे आन्दोलन स्थगित करना पड़ा, उस से वह सहमत न हुए।

इसके बाद से हमारे मतभेद बढ़ने शुरू हुए। परन्तु इस निमित्त से उन्होंने हम दोनों में विद्यमान भ्रातृभाव के मधुर सम्बन्ध में कभी ठेस नहीं पहुंचाई। इस मतभेद के समय मुझे उनकी बच्चों जैसी सरल प्रकृति का परिचय मिला। वह जिसे सत्य समझते थे, उसे खुलेआम कहने में संकोच नहीं करते थे, चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हों।

समय के बीतने के साथ-साथ मैंने पाया कि हम दोनों की प्रकृति में पर्याप्त भेद है, परन्तु यह भिन्नता मेरे लिए स्वामी जी की आत्मा की महानता को ही सिद्ध करने वाली हुई। खुलेआम विचार कोई अपराध नहीं, यह एक गुण है, सचाई की परख है। स्वामी जी के विचारों में सदा स्पष्टवादिता होती थी।

बारदौली आन्दोलन सम्बन्धी निर्णय ने उनका दिल तोड़ दिया था। वह मुझ से निराश हो गए। उन्होंने बलपूर्वक मेरे इस निर्णय का विरोध किया। मेरे पास भेजे गए निजू पत्रों में तो यह विरोध और भी अधिक प्रबल होता था, परन्तु उन्होंने उतने ही बल के साथ उनमें मेरे प्रति स्नेह भाव भी प्रकट किया था। केवल पत्रों में ही अपना स्नेह प्रकट कर के उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वह अवसर पाकर मुझसे अलग मिले, उन्होंने अपनी स्थिति स्पष्ट की और मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न किया। परन्तु मुझ से अलग मिलने का वास्तविक कारण, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, मुझे इस बात का

विश्वास दिलाना था कि वह अब भी मुझे अपना छोटा भाई समझ कर प्रेम करते हैं। उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई। मानो ऐसा विश्वास दिलाना वह आवश्यक समझते थे।

कुछ ही मास पूर्व स्वामी जी जब अन्तिम बार मुझ से साबर-मती आश्रम में मिलने आये, उसका स्मरण कराये बिना मैं उस महान् सुधारक के जीवन संस्मरण समाप्त नहीं करना चाहता। (उसके आधार पर), मैं अपने मुसलमान मित्रों को विश्वास दिलाना चाहता हूं कि वह मुसलमानों के विद्वेषी थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह कई मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे। परन्तु उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना उन के मन में न थी। उन का विचार था कि हिन्दुओं को डराया जाता है, इसलिए वह चाहते थे कि हिन्दू बहादुर बने और अपने जीवन एवं सम्मान की रक्षा स्वयं कर सकें। उन्होंने मुझे बताया कि इस विषय में मुझे गलत समझा गया है और उनके विरुद्ध कही जाने वाली अनेक बातों में सर्वथा निर्दोष हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास कई धमकी भरे पत्र आये हैं। इसलिए उनके मित्रों ने उन्हें अकेला यात्रा करने से सचेत किया है। परन्तु दृढ़ ईश्वर-विश्वासी स्वामी ने कहा—"सिवाय परमात्मा के मैं किस का सहारा ढूंढूं। उस की इच्छा के विपरीत घास की एक पत्ती भी नष्ट नहीं हो सकती। इसलिए मैं समझता हूं जब तक वह प्रभु मेरे इस शरीर से कुछ सेवा लेना चाहते हैं, तब तक मेरा कुछ नहीं हो सकता।"

आश्रमवास के इस काल में उन्होंने आश्रमवासी बालक-बालि-काओं को उपदेश देते हुए बताया कि हिन्दू-धर्म की रक्षा का सर्वोत्तम साधन आन्तरिक शुद्धि अर्थात् आत्म-शुद्धि है।

चरित्र गठन तथा शरीर निर्माण के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर सबसे अधिक बल दिया।

जिसने अपने जीवन का

क्षण-क्षण

और

सम्पत्ति

का कण—कण

राष्ट्र-यज्ञ में होम दिया

उस त्यागी-तपस्वी

स्वामी श्रद्धानन्द

को

हमारा बारम्बार नमस्कार

आर० के० प्रोडक्ट्स

इंडस्ट्रियल एरिया,

आनन्द पर्वत, नई दिल्ली—११०००५।
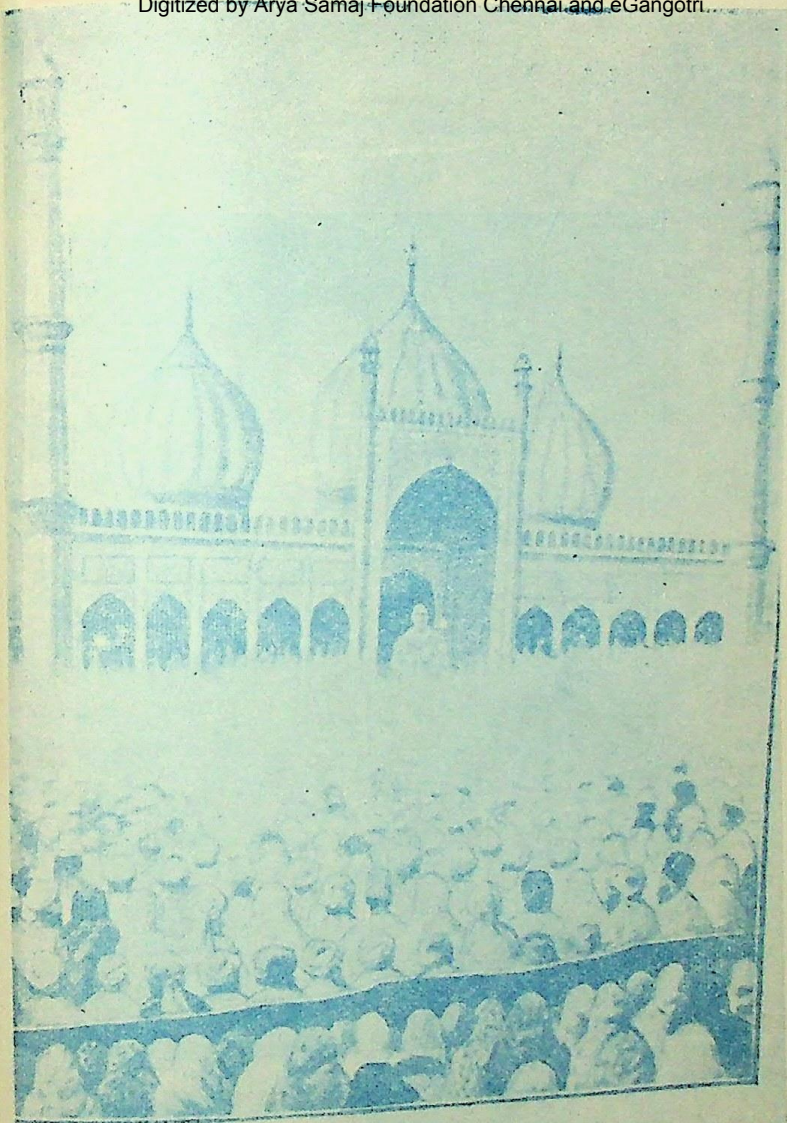
संवत १९७५ में स्वामीजीका देहली जामा
मसजिदकी वेदीपर से उपदेश।

स्वामी जी ने सर्वधर्म सद्भाव अपनाया — जामा मस्जिद के मिम्बर पर से भाषण
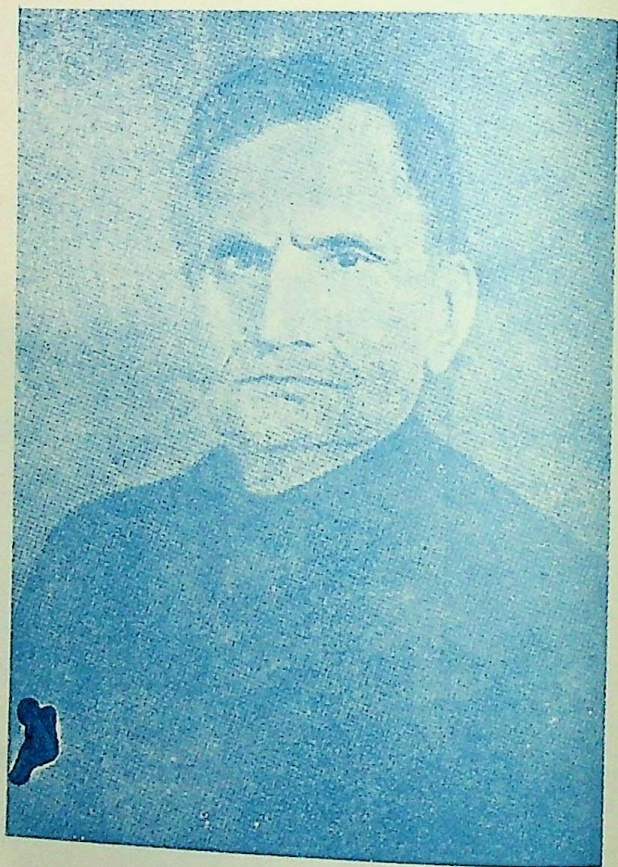
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, स्वामी जी के कनिष्ठ सुपुत्र, जो हमारे देश के प्रमुख सम्पादक के रूप में विख्यात हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान और उस का प्रतिकार

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

□

हमारे देश में जो सत्य-व्रत के ग्रहण करने के अधिकारी हैं, एवं इस व्रत के लिए प्राण दे कर जो पालन करने की शक्ति रखते हैं, उनकी संख्या बहुत ही कम होने के कारण हमारे देश की इतनी दुर्गति है। ऐसी अवस्था में स्वामी श्रद्धानन्द जैसे महान् वीर की इस प्रकार मृत्यु से कितनी हानि हुई होगी इसके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इस में एक बात अवश्य है कि उनकी मृत्यु कितनी ही दुःखदायक क्यों न हुई हो, किन्तु इस मृत्यु ने उन के प्राण एवं उनके चरित्र को उतना ही महान् बना दिया है। इतिहास में अनेक बार देखा जाता है कि जिन्होंने अपना सब कुछ देकर कल्याण-व्रत को ग्रहण किया है, अपमान और अपमृत्यु ने उनके ललाट पर जय-तिलक की तरह अपना स्थान जमाया है। महापुरुष आते हैं प्राण की मृत्यु के ऊपर जय करने के लिए और सत्य को जीवन की सामग्री बनाने के लिए। हमारे खाद्य द्रव्य में प्राण देने का उपकरण है, वह

वायु में भी है, एवं वैज्ञानिक परीक्षागार में भी है। परन्तु जब तक वह उद्‌भिज प्राणी में जीवन आकार नहीं धारण करता तब तक प्राण की पुष्टि नहीं होती। सत्य के सम्बन्ध में भी यही बात है। केवल वाक्यों के द्वारा आकर्षण कर उसे जीवन-गत करने की शक्ति कितनों में है। सत्य को जानते बहुत हैं, किन्तु उसको मानता वही है जो विशेष शक्तिमान् है। प्राणों की आहुति के द्वारा मानकर ही हम उस सत्य को सब मनुष्यों के लिये उपयोगी बना देते हैं। वह मान कर चलने की शक्ति ही एक सुन्दर वस्तु है। इस शक्ति की सम्पद् को जो समाज को अर्पित करते हैं उन्हीं के दान का महामूल्य है। सत्य के प्रति उसी निष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को दे गए हैं। अपनी साधना-परिचय के उपयोगी जिस नाम को उन्होंने ग्रहण किया था वही सार्थक हुआ। सत्य की उन्होंने श्रद्धा की थी। इसी श्रद्धा के मध्य सृष्टि-शक्ति है। इसी शक्ति के द्वारा वे अपनी साधना को मूर्त रूप में सजीव कर गये हैं। इसी कारण उनकी मृत्यु भी प्रकाशमय होकर उनकी श्रद्धा को, उस भयहीन, दोषहीन तथा क्रांतिहीन अमृतमय छवि को उज्ज्वल कर प्रकाशित करती। सत्य के प्रति श्रद्धा के मूर्तरूप इस श्रद्धानन्द को आज हम उन के चरित्र के मध्य सार्थक आकार में देख रहे हैं। यह सार्थकता बाह्य फलस्वरूप नहीं है, अपितु निज की अकृत्रिम वास्तविकता में है।

विधाता जब दुःख को हमारे पास भेजता है तब वह अपने साथ एक प्रश्न लेकर आता है। वह हम से पूछता है कि तुम हमको किस भाव से ग्रहण करोगे? विपद् आवेगी नहीं ऐसा नहीं हो सकता, संकट का समय उपस्थित होता है, उद्धार का कोई भी उपाय नहीं रहता। किन्तु जिस प्रकार विपद् को व्यवहार करते हैं इसी के ऊपर प्रश्न का सदुत्तर निर्भर है। किसी पाप के उपस्थित होने पर हम उससे डरें या उसके सम्मुख अपना सिर झुकावें? अथवा उस पाप के विरुद्ध पाप ही को सन्मुखी करें, मृत्यु के आघात दुःख के आघात के

ऊपर रिपु की उन्मत्तता को जागृत करें। शिशु के आचरण में देखा जाता है कि जब वह गिरता है तब वह उल्टे जमीन को मारता है। वह जितना ही जमीन को मारता है, फलस्वरूप उल्टा हो जमीन की चोट लगती है। परन्तु यदि किसी वयस्क को ठोकर लगती है तो वह सोचता है कि वह किस प्रकार दूर की जावे। परन्तु हम देखते हैं कि किसी समय बाहर के आकस्मिक आघात की चमक में मनुष्य भी शिशु की बुद्धि वाला हो जाता है। उस समय सोचता है कि धैर्य का अवलम्बन करना ही का पुरुषता है, क्रोध का प्रकाश करना ही पौरुष है। हम यह स्वीकार करते हैं कि आज दिन स्वभावतः ही क्रोध आवेगा, इस मानव सुलभ धर्म को बिल्कुल छोड़ा नहीं जा सकता। किन्तु यदि हम क्रोध से अभिभूत हो जायें तो वह भी मानव-धर्म नहीं है। आग के लग जाने पर यदि सब कुछ भस्म हो जावे तो आग की रुद्रता को लेकर आलोचना करना वृथा है। विपद् सभी पर आती है, जिनके पास उसके हैं प्रतिकार के उपाय नहीं, वे भी दोषी हैं।

भारतवर्ष के अधिवासियों के मुख्यतया दो भाग हैं—हिन्दू और मुसलमान। यदि हम यह समझें कि मुसलमानों को एक ताक में रख देश की सभी मंगल चेष्टाओं में सफल होंगे तो यह भी एक भारी भूल है। हमारे लिये सबसे ज्यादा अमंगल और दुर्गति का विषय यह है कि मनुष्य मनुष्य के पास रहता है, किन्तु उन के मध्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राज्य में राजपुरुषों के साथ हमारा एक बाह्य योग-दल है, किन्तु आन्तरिक सम्बन्ध नहीं रहता। विदेशी राजत्व में यही हमारे लिये सबसे अधिक पीड़ा-जनक है।

इसी से आज हमें देखना होगा कि हमारे हिन्दू-समाज में कहां कौन सा छिद्र है, कौन सा पाप है। अति-निर्भय भाव से उस पर हमें आक्रमण करना होगा। इसी उद्देश्य को लेकर आज हिन्दू-समाज का आवाहन करना होगा। कहना होगा हम पीड़ित हुए हैं, हम लज्जित

हुए हैं, बाहर के आघात से नहीं; किन्तु अपने भीतर के पापों के फलस्वरूप आओ, आज हम सब मिलकर उस पाप को दूर करें। परन्तु हमारे लिये यह बहुत सहल बात नहीं है, क्योंकि हमारे भीतर बहुत प्राचीन अभ्यस्त भेद-बुद्धि भरी हुई है। बाहर बहुत पुरानी भेद की प्राचीर हैं, मुसलमानों ने जिस समय किसी उद्देश्य को लेकर मुसलमान समाज को आवाहन किया है, उन्हें कोई भी बाधा नहीं पड़ी। एक ईश्वर के नाम पर 'अल्लाह ओ अकबर' कह कर उन्हें बुलाया है। फिर आज हम सब बुलावेंगे, हिन्दू आओ, तब कौन आवेंगे ? हमारे मध्य कितने छोटे-छोटे सम्प्रदाय हैं, कितनी प्रादेशिकता है, उनको पार कर कौन आवेगा ? कितनी आफतें पड़ीं, किन्तु कभी भी तो हम एकत्रित नहीं हुए। बाहर से जब पहली बार मुहम्मद गौरी का आक्रमण हुआ था, तब भी तो उस आसन्न विपद् के दिन हिन्दू एकत्रित नहीं हुए थे। इसके बाद मन्दिर के बाद मन्दिर लुटने लगे, देवमूर्तियाँ झूठी होने लगीं, तब वे अच्छी तरह लड़े हैं, मारे गये हैं, खण्ड-खण्ड हो कर युद्ध करके मरे हैं, किन्तु एक नहीं हुए। अलग-अलग थे, इसीलिये मारे गये। युग-युग में हमारे पास इसके प्रमाण हैं। हां, सिक्खों ने अवश्य एक समय इस बाधा को दूर किया था। परन्तु सिक्खों ने जिसके द्वारा इस बाधा को दूर किया, वह सिक्ख धर्म था। पंजाब में सिक्ख धर्म के आवाहन करने पर जाट प्रभृति सभी जातियाँ एक झण्डे के नीचे एकत्रित हो सकी थीं। शिवाजी ने भी एक समय धर्मराज्य की स्थापना की नींव डाली थी। उनकी जो असाधारण शक्ति थी उसी के द्वारा वे समस्त मराठों को एकत्र कर सके थे। इसी सम्मिलित शक्ति ने भारतवर्ष को अपनाकर छोड़ा था। घोड़े के साथ जब 'घुड़सवार का सामजस्य' रहता है तभी वह घोड़ा किसी भी तरह नहीं रुकता। शिवाजी के साथ होकर जो उस दिन लड़े थे, उन के साथ भी शिवाजी का ऐसा ही सामंजस्य था। बाद में ऐसा सम्बन्ध नहीं रहा। पेशवाओं के मन में, आचरण में, भेद-बुद्धि का उदय हुआ और इसी के फलस्वरूप उन

का पतन भी हुआ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यह जो हमने भेद-बुद्धि के पाप को पाल रखा है, वह अत्यन्त भयंकर है। पाप का प्रधान आश्रय दुर्बलता के मध्य विराजमान है।

अतएव यदि मुसलमान हमें मारते हैं और यदि हम उसे पड़े-पड़े सह रहे हैं तो यह केवल संभव हुआ है हमारी दुर्बलता के कारण। हमें अपने लिये, एवं प्रतिवेशियों के लिए भी अपनी दुर्बलता को दूर करना होगा। हम प्रतिवेशियों के निकट अपनी अपील करते हैं कि तुम इतने क्रूर मत बनो, अपनी उन्नति करो। नरहत्या के ऊपर किसी भी धर्म की भित्ति स्थापित नहीं की जा सकती। परन्तु यह अपील इसी दुबलता का रोना है। जिस प्रकार वायुमण्डल के घिर जाने पर झड़ी आप ही आरम्भ हो जाती है, धर्म की दुहाई दे उसे कोई बाधा नहीं दे सकता, उसी प्रकार दुर्बलता के पाल रखने पर अत्याचार भी होने लगते हैं, उन में कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता। कुछ समय के लिए एक उपलक्ष्य को लेकर परस्पर में कृत्रिम बन्धुता हो सकती है, किन्तु चिरकाल के लिए नहीं हो सकती।

आज हमारे अनुताप का दिन है, आज हमें अपने अपराध का प्रायश्चित्त करना होगा। सत्यमय प्रायश्चित्त यदि हम करेंगे तभी शत्रु हमारा मित्र हो सकेगा, रुद्र हम से प्रसन्न होंगे।

महात्मा मुंशीराम जी और गुरुकुल की स्मृतियां

श्री राम्जे मेक्डानल्ड

[आज से ६२ वर्ष पूर्व सन् १९१४ की शीत ऋतु में इङ्गलिस्तान के दिवंगत प्रधान मन्त्री मैक्डोनल्ड महोदय भारत में आये थे। उस समय उन्होंने गुरुकुल का भी अवलोकन किया था। अपने गुरुकुलीय संस्मरणों को उन्होंने 'डेली क्रानिकल' में छपाया था। उन्हीं स्मृतियों का यह अविकल अनुवाद यहां पर प्रस्तुत किया जाता है।]

जिन्होंने भारतीय राजविद्रोह का अध्ययन किया उन्होंने गुरुकुल जहाँ आर्यसमाज के कुमारों को शिक्षा दी जाती है—का नाम अवश्य सुना होगा। यह शिक्षणालय आर्यों की वृत्तियों और आदर्शों का सब से अधिक अनुरूप प्रतिबिम्ब है और इस प्रगतिशील धार्मिक संस्था (आर्यसमाज) के विरुद्ध उठाये गये सभी सन्देह इस पर केन्द्रित हो गये हैं। इसी कारण सरकार की इस पर वक्र दृष्टि रही है। पुलिस के कर्मचारियों ने इस पर रिपोर्टें तैयार की हैं तथा अधिकांश अर्ध-गोरों के दोषारोपों का यह पात्र रहा है। मुझे बताया गया कि रात्रि

में यात्रा कर के, सप्ताह के अन्तिम दिनों में इस शिक्षण संस्था का अवलोकन करना मेरे लिए बहुत अनुकूल रहेगा। मैं दिल्ली से हरिद्वार जाने वाली एक गाड़ी में, जिसकी चाल मध्यवर्ती स्टेशनों पर विराम करने के कारण अनुमानतः दस मील प्रति घण्टा रही होगी, सवार हुआ। निद्रा लाने का प्रयत्न करते हुये जैसे-तैसे रात कटी।

प्रभात बेला में हरिद्वार पहुंचा, जहां गंगा नदी पर्वतों की गोद छोड़कर, नीचे मैदान में उतरी है। स्टेशन, आत्मिक पापशुद्धि की विश्वव्यापिनी और शास्वत पिपासा से प्रेरित तीर्थ-यात्रियों से भरा पड़ा था। यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि इन में से बहुत से लोग बहुत दूर से आए हुए हैं। वृक्षों से ढकी हुई पहाड़ियाँ शीश उठाए खड़ी थीं। पवन इंगलिस्तान के शिशिर-काल के प्राभातिक झोकों-सा तन को काटता हुआ बह रहा था। हमने पैदल ही यात्रा प्रारम्भ की। नदी-तीर पर पहुंचते ही सामने का दृश्य खुल गया। समीपवर्ती पहाड़ियाँ, महान् हिमालय के हिममंडित शिखरों के चरणों में सविनय साष्टांग प्रणिपात करती हुई-सी दीख रही थीं। सरिता की एक तरंग अधित्यका का एक-एक गुल्म, एक-एक हिम-मंडित प्रदेश, सूर्य की स्वर्णमयी आभा से भासमान था।

किनारे पत्थरों पर एक तमेड़ (बाँस की खपंचियों से सुबद्ध, मिट्टी के तेल के पीपों का एक बेड़ा) पड़ी थी। इस पर बैठा कर हमें धारा में डाला गया। दूसरे ही निमेष में हम मध्यधारा में पहुंच गए। गहरे जल में हम निश्शंक बह रहे थे। अकस्मात् नदी की तली हमारे नीचे साथ-साथ सरकती हुई मालूम हुई। तमेड़ झटके के साथ टकराई। पानी छीटों में उड़ा। नन्हा बेड़ा तत्क्षण ही झाल में होकर, गहरे जल की भंवरियों तथा लहरियों में पड़कर पूर्ववत् स्थिर हो गया। चक्कर देती हुई, झूले खिलाती हुई और छींटें उड़ाती हुई नदी, अपने भार को वेग से लिए जा रही थी। बन्दर हमें देखकर दाँत किटकिटाते थे बन के अद्भुत दृश्य क्षण भर झाँकी दिखा कर, दूसरे ही क्षण लम्बी

झाड़ियों में मुंह छिपा लेते थे। एक रेतीली खाड़ी में हम उतरे और एक उत्तप्त और बालुकामय मार्ग से वन में प्रविष्ट हुए। हमारे सिरों से कहीं ऊंची पीली घास खड़ी थी। पर्वतीय शीतल पवन को हिलोरें अब बन्द हो गई थीं। सूर्य का ताप शनैः शनैः दुःसह होता जा रहा था। अन्त को हम वृक्षों से अंशतः आच्छादित एक लम्बी और सीधी सड़क पर पहुंचे। सुदूर, एक उन्नत बांस के सिरे पर, एक पताका दीख पड़ी। गुरुकुल दृष्टिगोचर होने लगा।

महात्मा मुन्शीराम जी

सन् १९०१ की बात है। श्री मुन्शीराम जी, जालन्धर के एक वकील, संसार से विरत, कानून की रीति-नीति और भोग-विलासों से उदासीन, अपनी पूर्वकालिक नास्तिक-वृत्ति से पराङ्मुख, तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के धार्मिक आन्दोलन को आत्मार्पण किये हुए, शांति और कर्म की साधना करते फिरते थे। वह हरिद्वार के समीपवर्ती बनों में एक शिक्षणालय की स्थापना करने के लिए आये। आर्यसमाज ने इन दिनों महर्षि दयानन्द के शिक्षा-विषयक विचारों को क्रियात्मक स्वरूप देने का निश्चय किया था। अपने बालकों को अंग्रेजी के पाठ दुहराते सुनकर मुन्शीरामजी इस मत पर पहुंचे कि वह सारी प्रणाली ही दूषित है। उन्होंने इस विषय में एक खर्रा प्रकाशित किया। समाज ने उनको एक नवीन संस्था की अध्यक्षता के लिए आमन्त्रित किया। उन्हें कोई अनुभव नहीं था, पर उनके पास विचार थे।

शिक्षणालय कहां स्थापित हो? "जहां मनुष्यों का पदार्पण न हो"—भक्त बोले। कारण, सरल भारतीयों को घड़ कर दीन हीन अंग्रेज तैयार करने के उद्देश्य से यह कोई सरकारी कालेज नहीं बनाया जा रहा था, जो उनके पवित्रतम पैत्रिक संस्कारों को खोदकर उस के स्थान पर केवल बालू की इमारत खड़ी कर दे। गुरुकुल में प्रविष्ट होने वाले छात्र को अपनी भारतीय-संस्कृति का अध्ययन कराया जाता था। उसकी बुद्धि का विकास देशभाषा के ही माध्यम द्वारा होना

था। संस्कृत भाषा को उसके विचारों के परिमार्जन के लिए मुख्य भाषा का स्थान दिया जाना था। पवित्र वैदिक-धर्म का वातावरण उसके लिए प्रस्तुत किया जाने वाला था। पश्चिम का विज्ञान और भाषा उसके पाठ्य विषय होने को थे, यद्यपि उन्हें गौण स्थान दिया जाना था। और विद्यालय के समाप्त हो चुकने पर, पावन ग्रन्थों के पारंगत और धर्मप्राण बालकों को ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं का संदेशहर बन कर संसार-सागर में कूद पड़ना था। उनकी जीविका का उपार्जन सरकारी नौकरियों द्वारा नहीं होना था और ना ही कानून का गला घोंट कर। वह तो होना था चिकित्सा, कृषि और शिक्षण जैसे कार्यों से, जो उसे जनता के दैनिक जीवन के साक्षात् सम्पर्क में लायें। फलतः शिक्षणालय की स्थापना ग्राम सड़कों से पृथक् तथा जननिवासों से दूर होती थी। इतनी दूर, जहां सांसारिक संघर्ष और घात-प्रतिघात की ध्वनि भी न पहुंच सके और जहां सांसारिक वासनाओं की छाया भी स्पर्श न कर सके। इसे अंशतः एकान्त आश्रम का रूप दिया जाना था। इन सब हेतुओं को लक्ष्य में रख कर मुन्शीराम जी उपयुक्त वन की खोज में थे। एक अस्वास्थ्य का चिरसंगी, पुत्र-विहीन, जमींदार, श्रद्धालु गृहपत्नी वाला आगे आया। उसने अपना सारा ग्राम मुन्शीराम जी के चरणों में रख दिया। उसकी भूमि में वन व्याघ्रों का आवास था। वर्षाकाल में वन्य हाथी पर्वतों से उतरते— रौंदते आ धमके थे, पर इस प्रदेश को पुण्य सलिला भागीरथी का आश्रय था। दान स्वीकार कर लिया गया और वहाँ मुन्शीराम जी ने अपनी होमाग्नि प्रज्वलित की।

गुरुकुल

गुलाब और चमेली के पुष्पों से सुवासित मार्गों से भोजनालय और पुष्प वाटिकाओं में से होकर, गुरुकुल पहुंचते हैं। चारों ओर क्रीड़ा क्षेत्र है। मध्य में वर्गाकार छात्रावास स्थित है। सिंह द्वार

(प्रवेश द्वार) पर वेदों के सनातन सूत्र, पवित्र "ओ३म्" नाम से अंकित ध्वजा फहराती हैं। सम्प्रति यहां ३०० बालक शिक्षा पा रहे हैं। प्रवेश के समय इन की उम्र अनिवार्यतः ६-१० वर्ष के अन्दर होनी चाहिए। पच्चीस वर्ष की आयु तक उन्हें यहां रहना होता है। उन्हें मुन्शीराम जी (जो कि अब "महात्मा जी" इस उपपद से प्रसिद्ध हैं) के न्यायोचित संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। वह उनके पिता हैं और ये उनके बालक। चार बजे प्रातः वे अपनी कठोर चीड़ के तख्तों की शय्या छोड़ कर उठ बैठते हैं, व्यायाम करते हैं और शीतल जल से स्नान करते हैं। अब प्राभातिक सन्ध्या (प्रार्थना) होती है उष्ण ऋतु में नंगे सिर और नंगे पाँव चलते हैं।

"संभव है उन्हें संयोगवश कभी कठोर जीवन व्यतीत करना पड़े अतः हमें उनको इसके लिए अभ्यास कराना चाहिये।" महात्मा जी ने मुस्कराते हुए मुझे कहा। पीताम्बर शिक्षणालय का गणवेश है। यहां रहते हुए विद्यार्थी, अपने माता-पिता को बहुत कम देख पाते हैं। परन्तु यहां विद्यालय भूमि में प्रति वर्ष एक बड़ा मेला (उत्सव) भरता है। सहस्रों की संख्या में जनता आती है। माता-पिता इसमें सम्मिलित होते हैं। विशेष झोंपड़ियाँ तैयार की जाती हैं। प्राचीन अंग्रेजी मेलों की-सी भीड़ एकत्र होती है। दीर्घावकाश में बालकों को उनके अध्यापक भारतभूमि के प्रसिद्ध स्थानों में ले जाते हैं। इन यात्राओं में वे कश्मीर तक भी हो आये हैं।

शासक वर्ग के मानस और दृष्टि के लिए, यह सब एक अशान्तिजनक समस्या है कार्य-कर्त्ताओं और अध्यापकों में कोई अंग्रेज नहीं, अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम नहीं पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा भारतीयों की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के तौर पर निर्दिष्ट अंग्रेजी-साहित्य की पाठ्य-पुस्तकें यहाँ प्रयुक्त नहीं होती, विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयों की परीक्षा में नहीं भेजे जाते। महाविद्यालय अपनी ही पदवियाँ देता है। यथार्थतः यह कानून भंग है। आश्चर्य से स्तब्ध

अधिकारियों का इसे एक ही साँस में राजद्रोह कहना अनिवार्य था। परन्तु उसे गुरुकुल पर अन्तिम निर्णय कदापि नहीं कह सकते। सन् १८३५ में मैकाले ने सरकारी पत्र में अपने विचार प्रस्तुत किये थे। तब से भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में किये गये प्रयत्नों में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन विचारों से भारत में प्रत्येक असन्तुष्ट हैं, परन्तु जहाँ तक मैं जान पाया हूं, गुरुकुल में प्रवर्तकों के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी, अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप में परिणत नहीं किया है।

प्रभावोत्पादक स्वागत

एक उन्नत-काय, दर्शनीय मूर्ति (प्रभावपूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा) हम से भेंट करने आती है। आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की प्रतिकृति घड़ने के लिए आदर्श के रूप में इसका स्वागत करता है और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमें संत पीटर का रूप देखता है। महात्मा जी हमें नमस्कार करते है, और हम उन के अभ्रक-जटित 'ओ३म्' नाम से अलंकृत, सादी साज-सज्जा वाले कमरे में प्रवेश करते हैं। मुझे दिये गये कमरे में शुभ्र वस्त्र से ढकी मेज पर उज्ज्वल वर्ण की पत्तियों से मिश्रित, लाल फूलों से भरे, दो गुलदस्ते रक्खे हुये हैं। किसी अतिथि को कभी इससे अधिक मनोहर कोठरी नहीं मिली। एक सेवक हमारे हाथों पर पानी डालता है और हमें एक अंगोछा देता है। जूते बाहर उतार कर हम एक कमरे में प्रवेश करते हैं, जहां भोजन परोसा गया है। महात्मा जी भोजन से पूर्व प्रार्थना करते हैं, हमारा मस्तक नत हो जाता है। मैंने अनेक प्रार्थनाएं सुनी हैं, पर ऐसी कभी नहीं सुनी थी। हमारे यजमान की संस्कृत स्वरों पर तूल देती हुई घन-गम्भीर वाणी पापशुद्धि के आभार सम्बन्धी संगीत का पूरा-पूरा अनुकरण कर रही है।

भोजन समाप्त होता है और हम शिक्षणालय की परिक्रमा करने

को निकलते हैं। सर्वत्र सुव्यवस्था और प्रसन्नता है। उज्ज्वल चमकीले नयनों वाले बालबटु और प्रशान्त मुद्रा वाले बड़े कुमार, कहीं मिट्टी में खिलौने बनाते हुये, कहीं मिलकर अपना पाठ दुहराते हुये, कहीं श्लोक-पाठ करते हुये और कहीं अपने गुरुओं के व्याख्यान सुनते हुए (क्योंकि गुरुकुल में व्याख्यान द्वारा ही अधिकत: अध्यापन होता है) श्रेणियों में बैठे हैं। विद्यालय समाप्त होता है। तुरन्त ही ब्रह्मचारियों का, बड़ी उमंग से क्रीड़ा-क्षेत्र की ओर धावा प्रारम्भ होता है। प्रत्येक छात्र गुजरता हुआ अपने आचार्य के पांवों में झुककर और अंजलिबद्ध हाथों को उठा कर अभिवादन करता है।

दोपहर ढल जाने पर हम वन में भ्रमणार्थ जाते है। महात्मा जी हमसे सुनी गई बातों की चर्चा करते जाते हैं। वह परिधान, अंगों की वह गठन, यह चाल-ढ़ाल, वह लम्बा दण्ड, किशोरावस्था में प्रति रविवार को प्रार्थनालय के द्वार पर देखे हुये गेलिलि के भ्रमण के दृश्य आश्चर्य-स्मृति कराते हैं। एक मैं ही अपने अंग्रेजी वेश में मंडली और उसके अभिनयों में उपहासास्पद हो रहा हूं। प्रतीची दिशा, अस्तोन्मुख सूर्य के प्रभा-मण्डल से झलमला रही है। अर्धचन्द्र कब से ऊँचे, सिर पर आकर, रजत वर्ण की चन्द्रिका छिटका रहा है। रात्रि का पवन तथा उसके साथ लम्बी वनस्पतियाँ भी मौन धारण कर रही हैं। कम्पित वस्तुओं की मर्मर ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। शीत हमारे ऊपर उतर रहा है। गुरुकुल अन्धकार में मग्न है। परन्तु छात्रावास के मध्य भाग में जलने वाली अग्नि शिखाएं आश्रम के द्वारों में से दिखाई दे रही है। आंगन मन्त्रोच्चारण के शब्द से परिपूर्ण हो रहा है। घास पर चटाइयां बिछा कर बुद्ध की प्रतिमा-सी छोटी-छोटी शुभ्र मूर्तियां बैठी हैं। उन में गति नहीं है। वे हमारी ओर दृष्टि भी नहीं उठाते। उनकी सामूहिक प्रार्थना (सन्ध्या) समाप्त हो चुकी है। अब वे अलग-अलग एकाग्र चित्त होकर ध्यान में मग्न हैं।

कमरे के अन्दर फर्श में स्थित एक कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित है।

चारों अध्यापक-वृन्द और छात्र मण्डल बैठा है। वह अपने एक प्राचीन धर्मकार्य (अग्निहोत्र) का अनुष्ठान कर रहा है। ज्वाला के हल्के प्रकाश में अपने सम्मुख रखे हुए एक पात्र में चम्मच डुबोते हुए और अग्नि में कुछ डालते हुए अधिष्ठाता को हम निहारते हैं। सहसा लौ ऊपर उठती है। एक स्वर से कोमल वाणियां पुकारने लगती हैं— "सर्वज्ञ, ज्ञान के दाता, ज्योतियों के ज्योति, परमेश्वर को हम आत्मार्पण करते हैं।" अब कुछ काल विराम होता है। ज्वाला नीचे उतरने लगती है। इतने में एक दूसरी आहुति डाली जाती है। ज्वाला पुनः लपक उठती है। कमरों की भित्तियों और छतों पर पीली आभा छा जाती है और प्रहसन के नृत्यों के-से दृश्य अंकित हो जाते हैं। पुनः तोतली बोलियां पुकारती हैं— 'हे प्रभो, हम तुझे आत्मदान करते हैं, जो तू एक-एक में रम रहा है।" इसी प्रकार क्रमशः विराम, प्रकाश और मत्र-पाठ होता है। अन्त में यज्ञ पाठ होता है अग्नि शान्त हो जाती है। गुरुकुल के आंगन को प्रकाशित करने के लिए अब एक मात्र तारे रह गये।

एक बार फिर हम अपने हाथ बाहर निकालते हैं। नौकर उन पर पानी डालता है। जूते उतार कर हम उन्मुक्त पवन में, सायंकालिक भोजन के लिए, चटाइयों पर बैठते हैं। हमारे चरणों में, गंगा आह्लादकारी कलकल करती हुई, पत्थरों में से होकर वेग से बह रही है, ऊंची-ऊंची घासों की ऊंची शिलाएं चन्द्र-ज्योत्सा को झेल रही हैं। वन-भूमि ओस से व्याप्त हुई-सी झिलमिला रही है। दूर बहुत दूर से आते हुए, अस्फुट वन्य शब्द भूतों और पथभ्रष्ट आत्माओं का मान कराते हैं। मानों स्वप्न में मैं किसी को कहते सुनता हूं—

"हमें और कुछ नहीं चाहिए। हमें शान्ति से प्रभु का भजन करने दो।"

जाति गुरु श्रद्धानन्द

काका कालेलकर

□

स्वामी श्रद्धानन्द जी में आर्य-जाति का मानोन्नत स्वभाव पूर्ण-तया प्रतिबिम्बित था। वे अपने जमाने के सर्वाङ्गीण प्रतिनिधि थे। सामान्य परिस्थिति में रहते हुए भी आर्य पुरुष अपने पुरुषार्थ से कैसी उच्च और असामान्य कोटि तक पहुंचा सकता है, इस का उदाहरण स्वामी जी के सफल जीवन में हम पाते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो चैतन्य देश में प्रकट किया, उस का ग्रहण अधिक से किसी ने किया था तो वे स्वामी श्रद्धानन्द ही थे। धर्मप्रचार, शिक्षाप्रचार और लोक सेवा तीनों बातों में अपना जीवन व्यतीत करके उन्होंने बलिदान के जल में जीवन यज्ञ का अद्भुत स्नान किया। गुरु और शिष्य दोनों पुरुषसिंहों ने अपने निर्भय जीवन से मृत्यु को परास्त किया।

अनार्य हत्यारे का बदला न लेकर उन के असंख्य अनुयायियों ने अपना आर्यत्व ही सिद्ध किया है। निर्भय पुरुष का रक्त संस्कृति क्षेत्र का उत्तम स्वाद है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जीवन भर अपने पसीने

से सेवा की और अन्त में अपने खून से। इसीलिये वे अमरपद प्राप्त कर सके।

संस्था खोलना और चलाना आजकल सामान्य-सी चीज हो गई है, क्योंकि अब जनता देख चुकी है कि लोक-जीवन में सुव्यवस्थित संस्थाओं का महत्व कितना है। लेकिन जब ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्य-संस्कृति के आत्मा को जागृत करने के लिए सत्यार्थप्रकाश में नई शिक्षा-प्रणाली का आदर्श पेश किया, तब भारतवर्ष में स्वदेशी संस्थाएं बहुत कम थीं। ऐसे समय पर सर्वस्व त्याग कर अपने पुत्रों को साथ लेकर गंगा के तट पर जंगल में जाकर बसना केवल श्रद्धाधन पुरुष का ही काम था। मानो वह एक का विश्वजित् यज्ञ ही था। मुंशीराम जी चाहते तो वे किसी भी क्षेत्र में अपनी कार्यशक्ति का परिचय दे सकते थे। फौज में दाखिल होते तो नामांकित सेनानी हो जाते। किसी रियासत की सेवा में प्रवेश करते तो प्रजाहितैषी प्रधान बन जाते। राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करते तो महासभा की धुरा का वहन करते। केवल धर्मोपदेशक बन बैठते तो हजारों सभाजय हासिल करते। साहित्य-सेवा का पेशा पसन्द करते तो साहित्य-सम्राटों से कर-भार वसूल करने की योग्यता प्राप्त करते। परन्तु उन्होंने सब छोड़ कर शिक्षा का ही कार्य अपना जीवन कार्य बनाया। इसीलिए मेरा सिर उन के सामने झुकता है। शिक्षा का क्षेत्र जगत् में अभी उतना प्रतिष्ठित नहीं है कि जितना उसका अधिकार है। तो भी मनुष्य जाति की उत्तम सेवा शिक्षा द्वारा ही होने को है।

शारीरिक शक्ति, द्रव्यशक्ति, राजशक्ति, संघशक्ति इत्यादि सब शक्तियां शिक्षा शक्ति के मुकाबले में गौण हैं। धार्मिकता, सेवा, ज्ञानोपासना और बलिदान यही जीवन का सर्वस्व है। और इन जीवन तत्वों का पोषण केवल शिक्षाप्रसार से ही हो सकता है। दीर्घ-दर्शी समाज पुरुष ही इस बात को समझ कर शिक्षा के क्षेत्र में अपना

प्रदान कर सकता है। वे सच्चे ब्राह्मण थे। और ब्राह्मण होने के कारण ही वे हरिजन सेवा की विशेष जिम्मेदारी अपने सिर पर है, ऐसा समझते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी को इसीलिए मैं जातिगुरु कहता हूं।

कल्याण मार्ग के पथिक स्वामी श्रद्धानन्द जी की सेवा अपनी दृष्टि से अपूर्व है। राष्ट्रीय शिक्षण, धर्म, जागृति, समाज सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने भारतवर्ष को एक नया ही रास्ता दिखाया है। श्रद्धा के बल से ही वे यह सब कर सके। जिस दिन उन्होंने अपने प्रिय पुत्रों को लेकर गुरुकुल की स्थापना के संकल्प से गङ्गा के तट पर निवास किया, वह दिन भारतवर्ष के वर्तमान इतिसाह में महत्व का था। उस दिन उन्होंने हिन्दू जाति के उद्धार की नींव डाली, ऐसा कहा जा सकता है। जिस दिन उन्होंने अन्त्यज बालकों को अपनाया उसी दिन हिन्दू जाति को उन्होंने संगठित किया। और जिस समय उन्होंने पत्थर, गोली और खञ्जर की तरफ तुच्छता की नजर से देखा, उसी दिन भारतवर्ष को उन्होंने निर्भय किया। अपनी अतुल श्रद्धा से उन्होंने अपना दीक्षा-नाम कृतार्थ किया। सचमुच श्रद्धानन्द राष्ट्रमूर्ति थे। ऐसा समय जरूर आयेगा कि जब उन के द्वेषी और विरोधी भी स्वीकार करेंगे कि यह भारतवर्ष का आधुनिक संन्यासी मित्र की नजर से ही सभी की तरफ देखता था। कायरों के जमाने में इस पुरुषसिंह की निर्भयता बहुत लोग न समझे होंगे और संशय की नजर से उनकी तरफ देखा होगा, तो वह स्वामी जी का दोष नहीं था। वैदिक आर्यों का स्वभाव हम श्रद्धानन्द जी में देख पाते हैं।

अन्तिम दर्शन

शाहपुराधीशजी सहित स्वामी श्रद्धानन्दजीका शुद्ध हुए मलकानोंके साथ सहभोज
स्थान वृन्दावन ज्येष्ठ, सम्वत् १९८० ।

शुद्ध हुए मलकानों के साथ प्रीतिभोज

स्वामी जी के जीवन के कुछ मर्मस्पर्शी प्रसंग

संकलयिता—सत्यपाल शास्त्री

□

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन एक ऐसा उपवन था, जिसमें रंग-बिरंगे फूल खिले। प्रस्तुत रचना में कुछ ऐसे ही प्रेरणा-प्रसून पाठकों को भेंट किये जायेंगे। पिछले दिनों इन पंक्तियों के लेखक को दो पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला—पहली है स्वामी जी के सुपुत्र प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति की लिखी 'मेरे पिता : संस्मरण' और दूसरी है 'स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज' (एक शिक्षा दायक जीवन) दूसरी पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं। यह गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ने प्रकाशित की है और प्रतीत होता है कि इसकी सामग्री का स्रोत भी इन्द्रजी की लिखी पुस्तक ही है।

इन्द्रजी की वर्णन-शैली बेजोड़ है। 'आर्यधन' के इसी अंक में आपको इस पुस्तक के कुछ अंश मूल रूप में पढ़ने को मिलेंगे। इस लेख में उपरिनिर्दिष्ट पुस्तकों के आधार पर स्वामी जी के जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

गुरुकुल की स्थापना

स्वामी जी को बिजनौर जिले से सन्देश प्राप्त हुआ कि वहां के एक जमींदार मुन्शी अमनसिंह जी गंगापार का एक पूरा गांव जिसके साथ लगभग ७०० बीघे जमीन है, गुरुकुल बनाने के लिए देना चाहते हैं। प्यासे को मानो पानी का ठंडा स्रोत मिल गया। स्वामी जी तो ऐसी भूमि की तलाश में ही थे। वह तुरन्त बिजनौर गये और आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम कांगड़ी ग्राम रजिस्ट्री करवा लिया।

गांव गंगा की धारा से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर शिवालक पहाड़ की तलहटी में था। गांव के साथ लगी हुई भूमि पहाड़ की तलहटी से लेकर गंगा तट तक फैली हुई थी। यह स्थान स्वामी जी को गुरुकुल के लिए आदर्श प्रतीत हुआ। गांव से दूर ठीक गंगा तट पर घने और कंटीले जंगल के मध्य में लगभग दो बीघा जमीन के टुकड़े को साफ कराकर उसमें आश्रम के लिए छप्पर डालना थोड़े ही दिनों का काम था, विशेषतः जबकि स्वामी जी जैसा धुन का पक्का और अनथक व्यक्ति उस कार्य को शीघ्र पूरा करने पर तुल गया हो।

जब छप्पर तैयार हो गये और पं० गंगादत्त जी आचार्य के रूप में बच्चों को संभालने के लिए गुरुकुल कांगड़ी पहुंच गये, तब आर्य प्रतिनिधि सभा की अनुमति से स्वामी जी गुजरांवाला आये और वहां की वैदिक पाठशाला से लगभग एक दर्जन बालकों को साथ लेकर लाहौर ठहरते हुए हरिद्वार की ओर रवाना हो गये। यह था गुरुकुल की स्थापना का उद्योग पर्व।

पुत्री का विवाह

महात्मा मुन्शीराम जी (संन्यास लेने से पूर्व स्वामी जी का यह नाम था) ने अपनी छोटी पुत्री अमृतकला का विवाह जात-पात के सब बन्धन तोड़कर डॉ० सुखदेव से किया। स्वामी जी के अन्य सब कार्यों की तरह अमृतकला का विवाह भी धमाके का कार्य था। डॉ० सुखदेव मैडिकल कालेज के छात्र थे। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी। कड़े आलोचकों की दृष्टि में यह

भी दोष की बात मानी गई कि डॉ० सुखदेव जाति के अरोड़े थे, जो क्षत्रियों से नीचे समझे जाते थे।

दूसरी ओर महात्मा जी इस बात पर तुल गये थे कि लड़की का वर तलाश करने में "न धन को देखूंगा, न रूप को और न जाति की परवाह करूंगा। डिग्रियाँ भी नहीं देखूंगा, केवल चरित्र देखूंगा।" महात्मा जी ने इस कसौटी पर डॉ० सुखदेव को खरा पाया और अमृतकला से सगाई करने के लिए उन्हें जालन्धर बुला लिया। इस समाचार के फैलने पर कुहराम मच गया। स्वामी जी के निकट सम्बन्धी इस सम्बन्ध के कट्टर विरोधी थे। महात्मा जी के सास-सुसर की ओर से सन्देश पर सन्देश आने लगे कि जाति से बाहर विवाह मत करो। आर्यसमाजी क्षेत्रों में भी तूफान खड़ा हो गया। जो आर्यसमाजी नेता महात्मा जी की तेज़ प्रकृति से घबराते थे, उन्होंने अमृतकला के विवाह के प्रश्न को सार्वजनिक रूप देकर लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर एक सम्मेलन रख दिया। उस सम्मेलन में कहने को तो अन्तर्जातीय विवाह के प्रश्न पर विचार रखा गया था, परन्तु वस्तुतः उसका उद्देश्य महात्मा जी के संकल्प को तोड़ना ही था। एक सदाशय पुरुष (चौधरी रामभज दत्त) ने सम्मेलन में यहां तक कह दिया कि महात्मा जी अपनी महत्त्वाकांक्षा पर लड़की को कुरबान कर रहे हैं। सम्बन्धियों के विरोध और समाज के डरपोक नेताओं की कड़ी आलोचनाओं से विचलित न होकर महात्मा जी अपने संकल्प पर डटे रहे और महात्मा जी के परिवार में अपने ढंग का प्रथम अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के बाद महात्मा जी ने जालन्धर की कोठी से विदाई ले ली और गुरुकुल की योजना में लग गये।

वाइसराय की गुरुकुल-यात्रा

स्वामीजी ने तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफ़ोर्ड को गुरुकुल आने का निमन्त्रण भेजा, जो तत्काल स्वीकृत कर लिया गया। एक दिन प्रातःकाल हरिद्वार से राजसी महन्तों के सजे हुए हाथियों पर सवार होकर लार्ड चेम्सफ़ोर्ड युक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स मेस्टन और अन्य अनेक अधिकारी गुरुकुल भूमि में पहुंचे। गुरुकुल की ओर से सब का हार्दिक स्वागत किया गया। उन्होंने पैदल घूम-घूमकर संस्था के सभी मुख्य-मुख्य भाग

देखे। अन्त में उन्हें उस पुण्य भूमि के महाविद्यालय भवन के सामने सेमल के पेड़ के चबूतरे के नीचे संस्कृत में अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया। उत्तर में उन्होंने भी गुरुकुल के आदर्शों और स्वामी जी के व्यक्तित्व की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

सर्वमेधयज्ञ

अभी महात्मा जी के दोनों पुत्र हरिश्चन्द्र और इन्द्र स्नातक नहीं बने थे, अगले वर्ष बनने वाले थे। एक दिन प्रातःकाल लगभग चार बजे दोनों को सोते से जगाकर कहा गया कि प्रधान जी ने (अर्थात् महात्मा जी ने) आप को बंगले पर बुलाया है, चलिए। ऐसे असाधारण समय में बुलाये जाने का कारण उनकी समझ में न आया। पूछने पर सेवक ने उत्तर दिया—मुझे कुछ मालूम नहीं। हां, इतना अवश्य कह सकता हूं कि वह आज रात भर सोये नहीं। पहले टहलते रहे, फिर कुछ लिखते रहे।

जब दोनों पुत्र बंगले पर पहुंचे, तो स्वामी जी को बड़े कमरे में टहलते पाया। यह स्वामी जी की विचार की मुद्रा थी। हरिश्चन्द्र और इन्द्र के पहुंचने पर वह कुरसी पर बैठ गये और अत्यन्त गम्भीरता से दराज़ में से फुलस्केप के आकार का एक लिखा हुआ कागज़ निकालकर दोनों के सामने रखते हुए कहा—इसे पढ़ लो और यदि तुम इससे सहमत हो तो इस पर हस्ताक्षर कर दो। उस कागज पर जो कुछ लिखा था, उसका सारांश यह था कि "जालन्धर में मेरा जो मकान है, उसमें अभी तक मेरी ममता विद्यमान है। मैं उसे भी मिटा देना चाहता हूं। इसलिए मैं इस दानपत्र द्वारा वह मकान गुरुकुल कांगड़ी के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को समर्पित करता हूं।" दोनों पुत्रों ने अर्पणनामे पर हस्ताक्षर कर दिये। उन दिनों गुरुकुल का उत्सव चल रहा था। स्वामी जी ने यह अर्पणनामा जनता को पढ़कर सुना दिया। उनका भाषण समाप्त होने पर जनता ने दिल खोलकर तालियों और जयकारों के साथ अपना हार्दिक भाव प्रकट किया।

संन्यास आश्रम में प्रवेश

अप्रैल १९१७ में गुरुकुल के उत्सव से एक दिन पूर्व प्रातःकाल के समय महात्मा जी ने इन्द्रजी को (तब तक हरिश्चन्द्र जी विदेश जा चुके थे) अपने बंगले पर बुलाकर सूचना दी कि "मैंने कल संन्यास लेने का निश्चय कर लिया है।" इन्द्रजी ने कहा कि "संन्यास की प्रथा देश और जाति के लिए बहुत हानिकारक है। आप तो पहले ही संन्यासी हैं, वेश बदलने से क्या लाभ ? संन्यास लेने पर भी आपको सार्वजनिक कामों के झंझट से छुट्टी नहीं मिलेगी।" महात्मा जी ने गम्भीर भाव से कहा कि "इन्द्र, तुझे तो मालूम ही है कि मैं युक्ति के आधार पर कोई कदम नहीं उठाता ; केवल श्रद्धा से प्रेरित होकर उठाता हूँ। यह निश्चय भी मैंने श्रद्धावश ही किया है। मेरा निश्चय अटल है।" तब इन्द्र जी ने मौन होकर सिर झुका दिया।

उत्सव से अगले दिन प्रातःकाल गंगा के इस पार मायापुर वाटिका में संन्यास ग्रहण का समारोह हुआ। संस्कार के समय हजारों की भीड़ थी। आर्यसमाज के अनेक संन्यासी, पण्डित और पदाधिकारी साक्षी रूप में उपस्थित थे। महात्माजी ने किसी महानुभाव को अपना आचार्य न बनाकर परमात्मा को ही आचार्य माना और जो प्रक्रिया आचार्य द्वारा होनी चाहिए थी, वह स्वयं ही पूर्ण कर ली। अन्त में महात्मा जी ने खड़े होकर निम्नलिखित आशय की घोषणा की "मैं सदा सब निश्चय परमात्मा की प्रेरणा से श्रद्धापूर्वक ही करता रहा हूँ। मैंने संन्यास भी श्रद्धा की भावना से प्रेरित होकर ही लिया है। इसलिए मैंने 'श्रद्धानन्द' नाम धारण करके संन्यास में प्रवेश किया है। आप सब नर-नारी प्रभु से प्रार्थना करें कि वह मुझे अपने इस नये व्रत को पूर्णता से निभाने की शक्ति दें।"

इस प्रकार महात्माजी ने श्रद्धा से प्रेरित होकर सर्वमेधयज्ञ का यह अन्तिम विधान भी पूर्ण कर दिया।

संगीनों की नोक पर

गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में ३० मार्च १९१९ को दिल्ली में हड़ताल हुई। गोलियाँ चलीं, कुछ लोग हताहत हुए। सार्वजनिक

सभा हुई, जिसमें स्वामीजी ने जनता को शान्त रहने को कहा। सभा की समाप्ति पर बीस-पच्चीस हजार की भीड़ एक क्रम में बँधकर फव्वारे से होती हुई घण्टाघर की ओर जा रही थी और उनके पीछे-पीछे कई मशीनगनें और बहुत-से घुड़सवार सिपाही मानो पहरा देते जा रहे थे। जब भीड़ घण्टाघर तक पहुंच गई, तब देखा कि कुछ आगे कम्पनी बाग की ओर गोरखा सिपाही लाइन बाँधे खड़े हैं। लोग 'भारतमाता की जय' और 'हिन्दू-मुसलमान की जय' आदि नारे लगाते हुए तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे। सिपाही भीड़ को अपनी ओर आता देखकर कुछ घबरा गये और तीन-चार कदम पीछे हटकर अपनी बन्दूकों को ऐसे ढंग से संभालने लगे, जैसे गोली छोड़ने के समय संभालते हैं। गलती से एक गोली चल भी गई। भीड़ गोली की आवाज से विक्षुब्ध हो गई। स्वामी जी ने लोगों को वहीं ठहरने और खड़े रहने का आदेश दिया और स्वयं आगे बढ़कर सिपाहियों की पंक्ति के ठीक सामने जाकर खड़े हो गये। सिपाही हैरान थे कि अब क्या करें।

स्वामीजी ने सिपाहियों से पूछा—'तुमने गोली क्यों चलाई ?'

इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर कई सिपाहियों ने अपनी बन्दूकों की संगीनें स्वामीजी की ओर बढ़ाते हुए कहा—'हट जाओ, नहीं तो हम छेद देंगे।' स्वामी जी एक कदम और आगे बढ़ गये। अब संगीन की नोक स्वामीजी को छू रही थी। स्वामी जी ने बहुत ऊँचे स्वर में कहा कि 'मार दो' और वहीं खड़े रहे।

जनता ने अपना प्रयाण जारी रखा। यह जुलूस नया बाजार में श्रद्धानन्द बलिदान भवन की इमारत तक गया। स्वामी जी उपर चले गये और लोग अपने-अपने घरों का।

मस्जिद के मिम्बर पर

३० मार्च की घटना आपने पढ़ी। ३१ मार्च को प्रातःकाल मानो हिन्दू-मुस्लिम का भेद मिट चुका था। 'हम' शब्द के 'ह' से हिन्दू और 'म' से मुसलमान का ग्रहण करके एकता के बन्धन की घोषणा करने का रिवाज उसी समय से चला है। ३१ मार्च को प्रातःकाल ३० मार्च की गोली से मृत एक

मुसलमान का जनाजा निकला। दिल्ली-वासियों को अपना रोष प्रकट करने का अच्छा अवसर मिला। जब जनाजा घण्टाघर के समीप पहुंचा, तब उसके साथ लगभग दो लाख की भीड़ थी। यह कहना कठिन है कि भीड़ में अधिक हिन्दू थे या मुसलमान। जनाजे के साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी भी थे और हकीम अजमलखाँ भी। दिल्ली की इन दोनों विभूतियों का प्रथम साक्षात्कार जनाजे के जुलूस में ही हुआ।

अगले दिन सिविल अस्पताल से पांच शहीदों की लाशें मिलीं। उनमें से दो मुसलमान थे और तीन हिन्दू। कुछ दूर तक पांचों अर्थियां साथ-साथ चलीं। उस समय अनुमान लगाया गया था कि उनके साथ कम से कम तीन लाख हिन्दुओं और मुसलमानों की भीड़ थी। चांदनी चौक से भीड़ दो हिस्सों में बंट गई। मुसलमानों का जनाजा ईदगाह की ओर चला गया और हिन्दुओं की अर्थियां यमुना नदी की ओर। ईदगाह और निगमबोध घाट पर भारी भीड़ थी। दोनों जगह देशभक्ति और एकता पर भाषण हो रहे थे।

इस जोश की चरम सीमा तब प्रकट हुई, जब ४ अप्रैल के दिन दोपहर बाद की नमाज के बाद जामा मस्जिद में मुसलमानों की विराट् सभा हो रही थी। उसमें मौलाना अब्दुल्ला चूड़ी वाले ने आवाज़ देकर कहा—'स्वामी श्रद्धानन्द जी की तकरीर भी होनी चाहिए।' नारा-ए-तकबीर से मस्जिद गूंज उठी। दो-तीन जोशीले नौजवान उठे और नया बाजार जाकर तांगे पर स्वामी जी को लिवा लाये। 'अल्लाहू अकबर' के नारों के साथ स्वामी जी मस्जिद की वेदी पर आरूढ़ हुए। भारत के ही इतिहास में नहीं, सम्भवतः इस्लाम के इतिहास में यह पहला अवसर था, जब एक गैर-मुसलमान ने जामा मस्जिद की वेदी पर से वाज़ किया। स्वामी जी ने ऋग्वेद के एक मन्त्र से अपना भाषण प्रारम्भ किया और 'ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः' के साथ समाप्त किया। ६ अप्रैल को फतहपुरी मस्जिद में भी स्वामी जी का भाषण हुआ।

एकता सम्मेलन

१९२४ में बकरीद पर दिल्ली में दगा हो गया। उस दंगे के समाचारों ने देश के नेताओं को उद्विग्न कर दिया, जिसका परिणाम वह एकता सम्मेलन था, जिस पर महात्मा जी ने २१ दिन का अपना प्रसिद्ध उपवास किया था

इस सिलसिले मे गान्धी जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी उस लेख की चर्चा करना भी अनुपयुक्त न होगा, जो "यंग इंडिया" में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में गान्धी जी ने हिन्दू-मुस्लिम विरोध के कारणों पर प्रकाश डालते हुए जिस शैली का अनुसरण किया था, उससे मुस्लिम जगत् पर उनकी उदारता का सिक्का चाहे जम गया हो, परन्तु भारत की राजनीति और सामाजिक दशा पर उसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। उस लेख में गान्धीजी ने कुरान और इस्लाम की खूब प्रशंसा की और सत्यार्थप्रकाश और उसके मानने वालों के लिए तिरस्कार सूचक शब्दों का प्रयोग किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी पर उस लेख में विशेष कृपा की गई थी। गान्धी जी ने उस लेख में स्वामी जी का जो पक्षपातपूर्ण आलोचना की थी, उससे देश के साम्प्रदायिक वातावरण में विष फैला।

लगता है कि गान्धी जी ने भी अपना लेख प्रकाशित हो जाने के बाद यह अनुभव किया कि वह उस लेख में आर्यसमाज और स्वामी जी के साथ अन्याय कर गये हैं। उन्होंने "यंग इंडिया" में अनेक लेख लिखकर अपने प्रारम्भिक लेख के असर को धोने का प्रयत्न किया, किन्तु जो विष फैल चुका था, वह दूर न हो सका। इस लेख के दो बुरे परिणाम हुए। एक तो यह कि देश को बिगड़े हुए वातावरण की जिम्मेदारी मुख्य रूप से आर्यसमाज और स्वामी जी पर डाली गई, जो सत्य के सर्वथा विरुद्ध बात थी और दूसरा यह कि साम्प्रदायिक मुसलमानों को विश्वास हो गया कि गान्धी जी हमसे डरते हैं। हम चाहे जो कुछ करें; वे हमें अच्छा और दूसरों को बुरा कहेंगे।

इस एक लेख के फलस्वरूप भारत की राजनीति में दस वर्ष के लिए अव्यवस्था पैदा हो गई।

स्वामी जी के संस्मरण आपने पढ़े। इन संस्मरणों को पढ़कर मन-मस्तिष्क पर यही प्रभाव पड़ता है कि स्वामी जी उन महापुरुषों में से थे, जो संसाररूपी रंगमंच से विदा होने से पूर्व कुछ कर गुजरते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्वामी जी के पवित्र जीवन, उनकी सेवा भावना, निर्भयता और कार्यदक्षता को अपना आदर्श बनाकर चलें। ★

स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या क्यों हुई थी ?

आचार्य सुरेन्द्र शर्मा "गौड़"

□

२३ दिसम्बर सन् १९२६ ई० के दिन सायं लगभग ३½ बजे नया बाजार (वर्तमान श्रद्धानन्द बाजार) लाहौरी गेट के पास दिल्ली में अब्दुल रशीद के द्वारा सार्वदेशिक सभा भवन में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पिस्तौल की ३ गोलियों से हत्या की गई थी। उस समय स्वामी जी निमोनिया के रोग से पीड़ित थे और डाक्टर अन्सारी की चिकित्सा में थे। रोग पीड़ित तो थे किन्तु उस दिन कुछ स्वस्थ से प्रतीत होते थे। हत्या या बलिदान से कुछ पहिले अपने पुत्र प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति आदि को बुलाकर वसीयत के रूप में अन्तिम आदेश देते रहे थे।

उन्होंने प्रो० इन्द्र जी को आर्य समाज का इतिहास लिखने के लिए कहा और यह भी कहा कि—"देखो ! इतिहास लिखते समय हमारी भूलों को तिरोहित न करना। हमसे भी बड़ी-बड़ी भूलें हुई हैं।"

इस पर श्री इन्द्र जी तथा डा० सुखदेव जी (स्वामी जी के जामाता) आदि ने कहा कि अब तो आप स्वस्थ हो रहे हैं। चिन्ता की कोई बात नहीं

है। आ० स० के इतिहास की सब सामग्री का संग्रह, लेखन आदि आप के आदेशानुसार ही होगा।

लगभग एक-दो बजे उक्त वार्तालाप करके इन्द्र जी आदि स्वामी जी से पृथक् हुए और निज-निज स्थान को चले गए।

स्वामी जी के पास उस समय एक तो उनके निजी सचिव बदायूँ निवासी गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक पं० धर्मपाल जी विद्यालंकार थे, जो हत्या के समय पास के दूसरे कमरे में सो रहे थे। दूसरा व्यक्ति स्वामी जी का निजी सेवक धर्मसिंह था। स्वामी जी बिस्तरे पर लेटे हुए थे। अब्दुल रशीद अचकन पहने हुए ऊपर चढ़ा और धर्मसिंह से कहा कि—"मैं स्वामी जी से कुछ मजहबी बातचीत करना चाहता हूँ।"

धर्मसिंह ने कहा कि—"स्वामी जी बीमार हैं और डाक्टर ने उनको आराम करने को कह रखा है अत: तुम फिर कभी आकर मिल लेना। इस समय नहीं।" सीढ़ियों के ऊपर उन दोनों की बातें स्वामी जी ने सुन लीं और कहा कि

"धर्मसिंह! कौन है! उनको आने दो।"

यथा आदेश धर्मसिंह सेवक ने उसे कमरे के भीतर आने दिया। अब्दुल रशीद फर्श पर बैठ गया। स्वामी जी से कुछ बातचीत हुई तो स्वामी जी ने उसे कहा कि "मैं जब अच्छा स्वस्थ हो जाऊँगा तब आप से अधिक बातचीत करूँगा।" अब्दुल रशीद स्वामी जी को मारने के लिए आया था, किन्तु पास खड़े हुए धर्मसिंह के कारण कुछ घबड़ा-सा गया और उसने धर्मसिंह से कहा कि मैं पानी पीना चाहता हूँ। धर्मसिंह पास के दूसरे कमरे में पानी लेने गया और अब्दुल रशीद ने स्वामी जी के सीने में गोली मार दी। सम्भवत: २-३ गोलियां स्वामी जी पर उसने चलाईं किन्तु स्वामी जी तो उसकी पहिली गोली पर ही शान्त हो गये थे, क्योंकि वह गोली उनके हृदय पर लगी थी।

धर्मसिंह दौड़ा और उसे पकड़ाना चाहा तो उसने उस पर गोली चला दी। गोली धर्मसिंह जी की जांघ में लगी। वह लहूलुहान होकर भूमि पर गिर पड़ा।

इतने में ही पं० धर्मपाल जी गोली की आवाज सुन कर आ गये और उन्होंने अब्दुल रशीद को दबोच लिया। उन्होंने उसके पिस्तौल वाले हाथ को

बलपूर्वक पकड़ कर पटक कर ऐसा जकड़ लिया कि वह न तो फिर कोई गोली ही चला सका और न भाग ही सका। पं० धर्मपाल जी ने उसे पुलिस दल के आने तक वैसे ही दबोचे रखा। पुलिस दल आया। चित्र लिया गया और पुलिस ने घातक को पकड़ कर अपने अधिकार में कर लिया।

सेवक धर्मसिंह रक्त से लथपथ हुआ, जैसे-तैसे सरक कर छज्जे पर पहुंचा और उसने चिल्लाकर नीचे बाजार में जातेहु ए लोगों को स्वामी जी की हत्या की सूचना दी। फिर तो दर्शनार्थी लोगों की भीड़ का कुछ पारावार ही न रहा। बिजली की तरह इस घटना की सूचना सारे शहर में फैल गई।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की यह हत्या क्यों हुई? इसके कारण क्या थे? पाठकों के परिज्ञानार्थ हम इसके मूल कारणों को यथार्थ में प्रकट करते हैं।

पाठकों को यह भली भाँति ज्ञान रहे कि सन् १९१५ ई० के अप्रैल मास में हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर मायापुर (कनखल) में महात्मा मुंशीराम जी ने ही अफ्रीका देश से आने पर गाँधी जी का अभिनन्दन किया और उन्हें सर्वप्रथम मिस्टर के स्थान पर "महात्मा" नाम से विभूषित कर उन्होंने ही सबसे अधिक इस नाम का प्रचार किया। रौलट एक्ट के विरोध में गांधी जी ने सन् १९१९ में सत्याग्रह युद्ध छेड़ा था। उनको सबसे अधिक समर्थन स्वामी श्रद्धानन्द जी और उनके कारण ही आर्य समाजियों के द्वारा मिला था। यह तथ्य है। किन्तु गांधी जी की नीति के कारण वे उनके आन्दोलन से पृथक् हो गये और उन्होंने मलकाना राजपूतों की शुद्धि का संचालन प्रारम्भ कर दिया। उससे लाखों लोगों की शुद्धि हुई। इससे मुसलिम जगत् कम्पायमान हो गया और स्वामी जी की हत्या के षड्यन्त्र करने लगा था। स्वामी जी की हत्या का यह प्रथम कारण था। दूसरा मुख्य कारण था सिन्ध की असगरी बेगम का शुद्धि करना।

यह असगरी बेगम अपने दो बच्चों के साथ दिल्ली में आकर शुद्ध हुई और स्वामी श्रद्धानन्द जी के संरक्षण में चलने वाले वनिता विश्राम आश्रम दिल्ली में रहती थी। शुद्ध होने पर उसका नाम शान्ति देवी रखा गया। यह आश्रम सदर बाजार रेलवे पुल के पूर्वी कोने पर ट्राम कारखाने के पूर्व में बने

हुए तीन मञ्जिले मकान के सबसे ऊपर के भाग में था। इसमें कई हिन्दू विधवा स्त्रियों की रक्षा होती थी।

इस आश्रम का संचालन डा० सुखदेव जी के निरीक्षण में होता था तथा प्रबन्धकर्त्ता थे ला० चिरंजीलाल जी भण्डारी, जो आटा ग्राम (जिला गुड़गावां) के पटवारी थे। सन् १९१८ के इन्फ्लुएंजा में एक ही दिन में प्रथम पुत्री की और उसी दिन उसकी पत्नी की भी मृत्यु हो गई थी। पुत्र के शव को जला कर आये तो घर में उसकी पत्नी (पुत्रवधू) को भी मरा हुआ पाया। असीम शोक था, किन्तु क्या कर सकते थे? विधाता के इस नाटकीय न्याय प्रदर्शन में किसी का वश भी क्या हो सकता था। निदान मृत पुत्रवधू की भी अर्थी बनाई उसे उठाया और श्मशान में लेजाकर निज औरस पुत्र तथा बहू के पति की चिता पर ही रख कर उसकी भी अन्त्येष्टि कर आये। निकट परिवार में अन्य कोई सहायक सिद्ध न हो सका। इस वज्राघात तुल्य शोक से विदीर्ण हृदय पटवारी जी नौकरी छोड़ कर शेष जीवन शान्त्यर्थ काँगड़ी में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने कई वर्षों तक अवैतनिक (केवल भोजन मात्र पर ही) वस्तु भण्डारी का काम किया। सन् १९२१ ई० में स्वामी श्रद्धानन्द जी और उनके पुत्र प्रो० इन्द्र जी आदि गु० कु० के संचालन कार्य से सर्वथा पृथक् हो गये और वे दिल्ली में ही आकर जम गये थे। स्वामी जी, इन्द्र जी, भण्डारी जी तथा डा० सुखदेव जी आदि उस वनिता विश्राम-विधवा आश्रम का संचालन भी कर रहे थे।

यहाँ असगरी बेगम कहाँ से कैसे आ गई? श्री भण्डारी जी के कथनानुसार असगरी बेगम कराँची में रहती थी और उसकी मैत्री पति से भिन्न किसी मुसलमान व्यक्ति से थी। उस व्यक्ति ने उसे समझाया कि तुम किसी दूसरे मजहब को कबूल कर लो तो शरह के मुताबिक तुम्हारी पहली शादी टूट जायेगी। फिर तुम्हारी शादी मेरे साथ ही हो जाने में कोई कानूनी रुकावट न होगी। तदनुसार असगरी बेगम ने करांची आर्यसमाज में जाकर अपनी शुद्धि कराने का आवेदन किया। किन्तु कराची के आर्यसमाजियों ने मुसलिम मिनिस्ट्री के भय से उसे वहाँ शुद्ध न किया और उसे आ० स० सक्खर में ने भेज दिया।

सक्खर में भी वही स्थिति थी जो कराँची में थी। वहाँ के आर्य समाजों ने भी असगरी वेगम को शुद्ध न किया। वह दिल्ली आकर शुद्ध हो गई और उस वनिता विश्राम में ही वह रहती थी। श्री ला० चिरंजीलाल जी पटवारी (उक्त भण्डारी जी) उसके प्रबन्धकर्ता थे। असगरी वेगम किस समाज मन्दिर में किसके पौरोहित्य में शुद्ध की गई थी, इसका मुझे परिज्ञान नहीं है।

वनिता विश्राम आश्रम में रहने वाली स्त्रियां भण्डारी जी को "पिता जी" नाम से पुकारती थीं। भण्डारी जी प्रायः सब स्त्रियों को आर्यसमाज चावड़ी बाजार के साप्ताहिक सत्संग में ले जाया करते थे। सबका आना-जाना लाहौरी गेट से ट्राम्वे द्वारा ही होता था।

शुद्ध होने पर असगरी वेगम शान्ति देबी के नाम से आश्रम में रहती थी और कुछ समय बीत चुका था।

एक दिन चावड़ी बाजार समाज के अधिवेशन से वापिस आते समय कार्य-वश भण्डारी जी कहीं चले गये और सत्यवती को समझा गये कि तुम सब ट्रामवे में बैठ कर आश्रम में पहुंच जाना।

यह सत्यवती कन्या किसी आर्य परिवार की थी और पति के परिवार से सम्भवतः तिरस्कृत थी, किन्तु आश्रम के जीवन में पूर्णतया विश्वासपात्र थी।

उस दिन आश्रम को लौटते ससय शान्ति देवी ने उससे कहा कि—

"चलो ! होज़ काज़ी से ही ट्राम में बैठ जायेंगे।"

और चावड़ी आ० स० मन्दिर से हौज़ काज़ी तक पैदल ही चली थीं। हौज़ काज़ी पर ट्राम का स्टेशन था। वहीं एक लेटर बक्स भी था। शान्तिदेवी ने चुपके से एक लिफाफा उसमें डाल दिया। सत्यवती ने पूछा—यह क्या किया शांति ने कहा—कुछ नहीं। यूँ ही इसे देख रही थी।

वे ट्राम में बैठीं और सब आश्रम में जा पहुंचीं। सत्यवती ने शान्ति द्वारा डाले हुए पत्र की बात भण्डारी जी से कह भी दी। परन्तु उस पर कोई विशेष ध्यान न दिया गया।

शान्ति ने यह पत्र बिहार में रहने वाले अपने उसी प्रेमी को लिखा था। वह वकील था। शान्ति ने पत्र में आश्रम के मकान का नंबर तथा चित्र सब लिख दिया था और दैनिक कार्यक्रम भी लिख दिया था।

उसके लेखानुसार ही उसका वह प्रेमी आ पहुंचा। आश्रम में मकान के नीचे तो दुकानें थीं और बीच के खण्ड में एक ईसाई लेडी डाक्टर रहती थी। वकील साहब शान्ति के उसी पत्रानुसार सीढ़ियों पर चढ़ गये और लेडी डा० से आश्रम का सब हाल मालूम कर लिया। भण्डारी जी से बातचीत हुई तो भण्डारी जी ने कहा कि वह शान्ति देवी (असगरी बेगम) यहां आश्रम में है और आश्रम के संरक्षक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज हैं। उनके आदेशानुसार ही सब व्यवस्था चलती है।

उस वकील ने शान्ति के पत्र को हाथ में लेकर भण्डारी जी को कहा कि यह उसका पत्र है। मैं उससे मिलना चाहता हूँ। भण्डारी जी ने ऊपर जाकर बातें शान्ति से कहीं और उसके समान आई तथा उससे वार्तालाप करके यह निश्चय कर लिया कि—

कल सायं अथवा अमुक समय पर आपके साथ मैं चलने को तैयार रहूँगी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने स्पष्टतया कह दिया था कि यदि कोई व्यक्ति शान्ति का अभिभावक संरक्षक है और शान्ति उसके साथ जाना चाहती है तो वह प्रसन्नतापूर्वक जा सकती है। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। आश्रम तो केवल अबलाओं की रक्षा और सहायतार्थ ही है। वह चाहे तो खुशी से जा सकती है।

स्वामी जी का आदेश पाकर वह वकील, शान्ति से दूसरे दिन ४ बजे सायं चलने को तैयार रहने को कह कर चला गया। इस निश्चय के बाद शान्ति के कल चले जाने की बात आश्रम की अन्य देवियों में फैल गई और उनमें यवन स्त्रियों के चरित्र विषय की कर्ण कटु आलोचना होने लगी।

इन स्त्रियों का भी कोई धर्म कर्म है? ये तो इसी प्रकार से दूसरों का

भी धर्म भ्रष्ट करती फिरती हैं। आज यहाँ हैं, तो कल वहाँ। इनका भी कोई ईमान धर्म है ?

आदि कठोरतम समालोचनाएं सुन कर शान्ति पर भी कुछ प्रभाव हुआ और उसने पूर्व निश्चयानुसार दूसरे दिन ४ वजे उस वकील के साथ न जाने का ही निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन निश्चित समय पर तांगा लेकर वकील साहब आ पहुंचे और ऊपर आश्रम में सूचना पहुँचाई।

शान्ति देवी ने कहलवा दिया कि "अब मैं आपके साथ नहीं जाऊँगी।"

इस उत्तर को सुनकर उस वकील ने सोचा कि बहुत मुमकिन है कि यह जवाब उसका न हो और आश्रम वालों ने ही अपनी तरफ से दे दिया हो। अतएव उसने कहा कि उसने तो कल कहा था कि मैं चलूंगी फिर आज कैसे मना कर रही है ? मेहरबानी करके उसे सामने आने दीजिये, जिससे मैं उससे ही पूछ लूं कि असलियत क्या है ?

भण्डारी जी ने शान्ति को बुलाकर उसके सामने कर दिया। शान्ति ने सीढ़ियों के ऊपर से ही बीच में खड़े हुए उन वकील महोदय के सम्मुख खड़ी होकर उनको कह दिया कि अब मैं आपके साथ चलने को तैयार नहीं हूँ। मेरा आपके साथ कोई वास्ता नहीं है।

वकील ने कहा कि आज क्या हो गया ? कल तो तुमने कहा था कि मैं चलूंगी, फिर आज मना क्यों करती हो ?

शान्ति ने उत्तर दिया कि कल की बात तो कल गई। आज तो अब मेरा यही पक्का निश्चय है कि मैं अब कहीं नहीं जाऊँगी।

इस पर उन दोनों के गर्मागर्म सवाल-जवाब भी होते रहे।

अन्त में वकील साहब नाराज होकर जाते हुए कह गये कि इस हरकत का नतीजा तुझे जल्दी ही भोगना पड़ेगा।

उसने असगरी वेगम के बाप या पति की तरफ से स्वामी श्रद्धानन्द जी, डाक्टर सुखदेव जी, भण्डारी जी तथा शान्ति देवी के नाम से वारण्ट भिजवा दिये। वारन्ट लेकर पुलिस पहुंची और सब कार्यवाही यथानियम की गई। स्वामी जी आदि की जमानतें हो गयीं। कोर्ट में केस चला। शान्ति के बयान हुए और कोर्ट मे सबको निर्दोष घोषित करके दो बच्चों की माँ शान्ति को भी जहाँ चाहे रह सकती है, इसकी पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी।

इसके पश्चात् शान्ति अथवा असगरी वेगम के पूर्व पति ने दोनों पुत्रों को शान्ति से वापिस लेने के लिए कोर्ट में दावा किया और कोर्ट ने दोनों बच्चों को उनके वाप को दे देने का निर्णय दे दिया।

कोर्ट का निर्णय सुनकर शान्ति ने कहा—

ये दो बच्चे परमात्मा ने मुझे दिये थे और आज कोई इनको मुझसे छीन कर दूसरों को दे रहा है, लेकिन मुझे विश्वास है कि मेरे बच्चे मेरे ही पास आकर रहेंगे।

इस प्रकार केस का वहाँ पटाक्षेप तो हो गया। किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या करने का प्रोग्राम भी निश्चित हो गया और तदनुसार ही २३ दिसम्बर १९२६ ई० को सायं ४ बजे श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की पूर्ण षड्यन्त्र के साथ अब्दुल रशीद के हाथों हत्या कर दी गई थी। स्वामी जी की हत्या तथा वलिदान होने के ये ही दो मुख्य कारण थे। अर्थात्—

(१) प्रथम तो यह कि उन्होंने सन् १९२१-२२ मे गाँधी जी की नीति से खिन्न होकर मलकाना राजपूतों की शुद्धि का आन्दोलन चलाया। गांव घड़ा-घड़ शुद्ध हो रहे थे इससे कांग्रेस के हिन्दू मुसलिम भाई-भाई के नारे भी नीरस हो गये थे और (२) दूसरा मुख्य कारण था उक्त असगरी बेगम की शुद्धि करना और उस केस में मुसलिम पक्ष का पराजय होना।

पाठकों को ज्ञात रहे कि कोर्ट से स्वतन्त्रा प्राप्त करके कुछ काल शान्ति देवी गु० कु० काँगड़ी में आचार्य रामदेव जी के निवास स्थान में रही थी और वहीं डा० राधाकृष्ण जी के भानजे के साथ उसका पुनः वैवाहिक सम्बन्ध हो गया। पुनः वह कुछ काल विड़ला जी की मिल में ग्वालियर रहे और फिर वे दोनों ही यवन बन गये तथा बम्बई में रहते रहे। उनकी दो कन्याएं भी उत्पन्न हुई थीं। बड़ी कन्या एम० ए० तक पढ़ी। छोटी-कुछ मोटी भारी भरकम बदन की थी तथा उसने सिनेमा क्षेत्र में पार्ट अदा करके अच्छा धन भी कमा लिया था। इस परिवार को सन् १९५३ के अन्त में यवन रूप में ही लेखक ने अन्तिम बार देखा और वीरवर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बलिदान को स्मरण करके आन्तरिक आत्मिक दुःख का अनुभव ही किया था।

आज पुनरपि उसी इतिहास की स्मृति पर वैसा ही अनुभव हो रहा है।

★
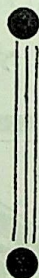
स्वामी श्रद्धानन्दजी !

स्वामी श्रद्धानन्द आपका नाम रहेगा सदा अमर।
प्राण आपने किए समर्पित भारत मां के चरणों पर।
हे दयानन्द ऋषि की सेना के महा यशस्वी सेनानी।
धर्मयुद्ध में प्राण समर्पण करने वाले बलिदानी।
हे गुरुकुल के संत, तपस्वी, वेदों के श्रद्धालु महान्।
आर्य संस्कृति के संरक्षक, हिन्दू जाति के प्रेरक प्राण।
जब देखा भारत के बालक, अंग्रेजों के बने गुलाम।
भूल गए ऋषियों की शिक्षा, योरप का ही लेते नाम।
फिर से वेद-शास्त्र की, शिक्षा का संकल्प किया।
गंगा की लहरें फिर झूमीं, वेद्र ऋचाओं की लय पर।
ऋषियों के युग की यादों से जाग उठे सपने सुन्दर।

स्वामी श्रद्धानन्द आपका नाम रहेगा सदा अमर।
प्राण अपने किए समर्पित भारत माँ के चरणों पर॥

देश में फिर जब आजादी के, धर्म युद्ध का बिगुल बजा।
दिल्ली की गलियों में आहत, युवकों का जब रक्त बहा।
केसरिया बाना पहने तब कूद पड़े रण आँगन में।
नए जोश की लहर जगाई, लाखों-लाखों के मन में।
दिल्ली के घण्टाघर नीचे, संगीनों की नोकों पर।
खोल दिया तुमने सीना था, हँसते हँसते यह कहकर।

अगर निहत्थे लोगों का ही, रक्त बहाने की ठानी।
पहिले गोली दागो मुझ पर, कर लो अपनी मनमानी।
जादू था वाणी में ऐसा, शाँत हो गईं बन्दूकें।
दूर हुआ आतंक मृत्यु का, मन से सारी जनता के।
दिल्ली की जामा मस्जिद में गूंजा था वेदों का स्वर।
हिन्दू मुस्लिम एक साथ सब, चले आपके कदमों पर।
स्वामी श्रद्धानन्द आपका नाम रहेगा सदा अमर।
प्राण आपने किए समर्पित भारत माँ के चरणों यर।।
सदियों से सोए थे हिन्दू, सावधान कर उन्हें जगाया।
ऊँच-नीच के भेद भुला कर, दलित जात को अपनाया।
कहा हिन्दुओं से मन्दिर के दरवाजे मत बन्द करो।
विधवाओं का भाग्य न छीनो, छुआ-छूत सब बन्द करो।
बहुत हुआ अन्याय आज तक, कर लो मन से पश्चात्ताप।
मां-बहनों के तिरस्कार से, बढ़ कर कोई नहीं है पाप।
मां की गोद मिली न जिसको, उसको अपना प्यार दिया।
खोले आश्रम बिना सहारा, थे जो उन्हें उबार लिया।
ऐसे ही अनगिन बच्चों को आश्रम घर परिवार दिया।
योग्य बनाया सभी रीति से जीने का आधार दिया।
वीर पुरुष थे वीरों की ही, भाँति मृत्यु का वरण किया।
अन्त समय भी ऋषि दयानन्द का सच्चा अनुकरण किया।
स्वामी श्रद्धानन्द आपका, नाम रहेगा सदा अमर।
प्राण आपने किए समर्पित, भारत मां के चरणों पर।

—सत्यकाम विद्यालंकार

स्वामी श्रद्धानन्द जी का गुरुकुल आगमन

—डा० धर्मानन्द केसरबानी

श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज ने जिस गुरुकुल की वनप्रान्तर में स्थापना की और जिसे अपना सर्वस्व देकर सींचा एवं पल्लवित और पुष्पित कर अपने उत्तराधिकारियों के सिपुर्द कर संन्यास आश्रम ग्रहण कर लिया तथा समग्र भारत के विशाल क्षेत्र को धर्म-जाति के उत्थान के लिए चुना और अपने आपको समर्पित कर दिया। परन्तु उस लगाये हुए उद्यान को माली कैसे भूल सकता था ? यदा-कदा वे यहां पधार कर छात्रों और अध्यापकों को उद्देश्य की पूर्ति के लिए उद्बोधन प्रदान करते रहते थे। गंगा की विमल धारा पर स्थित शांति तरु खटुए के नीचे समाधिस्थ होकर स्वयं में स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करते थे।

यह खटुआ वृक्ष, जिसे पश्चिमी भारत में 'सोना' कहते हैं वही महत्व रखता था जैसा बोलपुर शान्ति निकेतन में महर्षि देवेन्द्रनाथ के लिए मौलसिरी का तपस्या वृक्ष है, अथवा भगवान् बुद्ध का गया में वट वृक्ष है।

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों का देश और समाज में एक विशिष्ट स्थान है। उन्होंने हिंदी को सभी विषयों का माध्यम बनाने में पर्याप्त योगदान किया है। पर आज गुरुकुल की स्थापना के 76 वर्ष पश्चात् गुरुकुल के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। मैं अपने 25 वर्ष के संबंध के आधार पर कुछ विचार प्रस्तुत कर रहा हूं, जिससे यह संस्था पुनः अपने गौरव को प्राप्त कर सके।

सबसे बड़ी समस्या गुरुकुल के संविधान को है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का कोई भी पक्ष यह नहीं चाहता कि गुरुकुल उसके हाथ से निकल जाये। सभा के चुनाव में जब कोई दल हार जाता है तो उसकी मांग यह अवश्य हो जाती है कि सरकार गुरुकुल को अपने हाथों में ले ले, पर जब वह पक्ष चुनाव में विजयी हो जाता है, तो फिर वह अपनी मांग भूल जाता है। वस्तुतः इसमें स्वार्थ की कोई बात नहीं है। गुरुकुल आर्य समाज का गौरव है और कोई भी आर्यसमाजी यह नहीं चाहता कि उसकी प्रिय संस्था उसके हाथ से निकल जाये। इधर सभा की राजनीति का भी गुरुकुल पर कोई अच्छा असर नहीं पड़ रहा। जो दलबंदी सभा में होती है, गुरुकुल में भी वह दिखाई देने लग जाती है। कई बार तो प्रश्न यह सामने आ जाता है कि असली आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब कौनसी है और कौन से अधिकारी इसकी शिष्ट परिषद में आयें, ऐसी स्थिति से बचने का एक मात्र उपाय है कि गुरुकुल की सभा को राजनीति से अलग रखा जाये। गुरुकुल की शिष्ट परिषद में लगभग एक-तिहाई सदस्य आर्यसमाज के होने चाहियें अर्थात यदि शिष्ट परिषद के सदस्यों की संख्या 36 हो, तो १२ सदस्य आर्यसमाज के हों। इनमें से ६८ आर्यसमाजी शिक्षा शास्त्री हों और ६ पंजाब, हरियाणा, दिल्ली के आर्यसमाजी कार्यकर्ता हों। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष के पास इन तीन प्रदेशों की आर्यसमाज अपने द्वारा प्रस्तावित नाम भेज दे और फिर उनमें से अध्यक्ष महोदय ६ सदस्य मनोनीत कर दें। शेष ६ शिक्षा शास्त्रियों के नाम तो इन तीनों प्रदेशों समेत संपूर्ण भारत की आर्यसमाजों से मंगवा लिये जायें, पर उनका चयन भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष महोदय ही करें इससे

गुरुकुल और आर्यसमाज का संबंध भी बना रहेगा और सभा की दलगत राजनीति के प्रभाव से गुरुकुल बचा रहेगा। ये मेरे व्यक्तिगत विचार हैं।

संविधान अच्छा बन जाये, तो भी अपेक्षित है कि गुरुकुल में शिक्षकों, कार्यकर्ताओं और छात्रों की वेश-भूषा, उनका खान-पान, रहन-सहन गुरुकुल की परंपरा के अनुरूप हो। गुरुकुल में प्रवेश करते ही दर्शकों पर यह प्रभाव पड़े कि वे स्वामी श्रद्धानन्द की नगरी में आ गए हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल का प्रारंभ से ही समन्वयात्मक दृष्टिकोण रहा है। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए गुरुकुल को कोई नया पग उठाना पड़ेगा। हमारा प्राचीन साहित्य विज्ञान से भरा पड़ा है। गुरुकुल इस दशा में पहल करे। इस कार्य के लिये एक उच्च अध्ययन केन्द्र स्थापित करना पड़ेगा। विज्ञान और प्राचीन संस्कृति का समन्वय गुरुकुल के लिए अत्यंत आवश्यक है। साथ ही उपाध्यायों को अपने-अपने विषयों के अतिरिक्त इस बात पर बल देना होगा और उन्हें निबन्ध भी लिखने होंगे ताकि उनकी प्रतिभा से भारत को लाभ पहुंच सके। प्रत्येक दिशा में भारतीय दृष्टिकोण अपनाना होगा।

योग की शिक्षा को गुरुकुल में वह स्थान नहीं मिल रहा, जो मिलना चाहिये। यदि शरीर स्वस्थ है, तो फिर प्रत्येक कार्य में सफलता ही सफलता है। चाहे छात्र विद्यालय का हो और चाहे वह किसी महाविद्यालय का योग शिक्षा उसके सम्पूर्ण जीवन में उसकी दिनचर्या का अंग बन जाना परम आवश्यक है।

यदि ये कुछ सुझाव कार्यरूप में आ जायें, तो निस्संदेह आर्यजनता गुरुकुल से प्रेम करेगी। शिक्षा मंत्रालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अधिकारियों की गुरुकुल पर विशेष कृपा रही है। यदि गुरुकुल अपने आप को सुधार लेता है तो उनकी शुभकामनाएं और उनका सहयोग हमें प्राप्त है।

गुरुकुल को सही अर्थों में श्रद्धानन्द नगरी कैसे बनाया जाए

—डा० गंगाराम

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की गणना उन विलक्षण विभूतियों में होती है, जिन्होंने राष्ट्र व समाज को एक मोड़ दिया है। महर्षि स्वामी दयानंद जी सरस्वती के पश्चात् आर्य जगत् में स्वामी श्रद्धानंद जी को अद्वितीय स्थान प्राप्त है। जामा मस्जिद की वेदी से भाषण देने वाले वे प्रथम हिन्दू थे। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही में वे कितने प्रिय थे। दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार में गोरे सैनिकों की संगीनों के सामने सीना खोलकर खड़े हो जाना, उनकी वीरता का परिचायक है। जहाँ भी वे जाते थे और जिस क्षेत्र में भी वे प्रवेश करते थे, अपनी अमित छाप छोड़ जाते थे।

गुरुकुल कांगड़ी तो स्वामी जी का जीवित स्मारक है। सभी को यह आशंका थी कि हरिद्वार के जंगलों में अपने बच्चों को शिक्षा देने के लिये कौन भेजेगा। स्वामी जी ने अपने दोनों पुत्रों को सर्वप्रथम भेजा। अछूत उद्धार के आंदोलन में कूदे और अपने बच्चों के विवाह जात-पात तोड़ कर किये।

बात सन् १९२६ के अक्टूबर मास की है, जब बलिदान होने से २ मास पूर्व वे अन्तिम बार कुलभूमि में पधारे थे। अपने ८-१० दिन के निवासकाल में एक दिन महाराज ने इच्छा प्रकट की कि वे आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों से मिलना चाहते हैं। तीसरे पहर हम सब छात्र उस खटुए के वृक्ष के नीचे एकत्र हुए। स्वामी जी अपने निवास से बाहर आए और हम सबने चरण स्पर्श किया। बैठने पर छात्रों से पढ़ाई-लिखाई के बारे से हालचाल पूछा और आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना के बारे में अपने उद्‌गार प्रकट किये। उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार बौद्ध भिक्षुओं ने चिकित्सा में पारंगत होकर तिब्बत, बर्मा, श्रीलंका, चीन, कम्बोडिया और मंगोलिया प्रभृति देशों में आर्य संस्कृति की वैजयन्ती फहराई थी। गुरुकुल एक सोद्देश्य संस्था है। ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ ही संसार में वैदिक संस्कृति का विस्तार हो जिससे विश्व "एकनीड" (यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्) होकर प्रेम से रह सके। यही आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का हेतु था।

जीविका के प्रश्न को लेकर महाराज ने काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक "भारतरत्न" बाबू भगवानदास जी से हुए एक वार्तालाप का भी जिक्र किया। बाबू जी ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि आपके छात्र स्नातक बनकर क्या करेंगे? इन्हें नौकरियां तो मिल न सकेंगी। उत्तर में स्वामी जी ने बाबू भगवानदास जी से ही एक प्रश्न किया कि आप ही बताइये कि अब पढ़े-लिखे कितने प्रतिशत लोगों को नौकरियां मिल पाती हैं? तो उत्तर मिला कि ५ से १० प्रतिशत। स्वामी जी ने हंसकर कहा कि जब ९० से ९५ प्रतिशत को नौकरियां नहीं मिल पाती हैं तो मेरे यहां शत-प्रतिशत को नहीं मिलेंगी। बस यही अन्तर है।

इस वार्तालाप को श्री बाबू भगवानदास ने काशी से प्रकाशित होने वाले दैनिक आज में भी प्रस्तुत किया था।

स्वामी जी महाराज ने १९२२-२३ में बर्मा जाकर और वहां से प्रचुर धन प्राप्त कर आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की थी, जिससे गुरुकुल के स्नातक जीविकोपार्जन के साथ देश और जाति की सेवा कर सकें।

इसी वार्तालाप में श्री स्वामी जी महाराज ने सब छात्रों को साहसी बनने का भी उपदेश दिया और प्रेरित किया कि देश-विदेशों में जाकर ज्ञानोपार्जन के लिये कुछ साहसिक कार्य भी करें। उन्होंने "ग्लोवट्रोटर" शब्द (पृथ्वी-पदयात्री) का भी प्रयोग किया तथा पैदल या साईकिल पर चढ़कर ऐसा करने के लिये अपेक्षा प्रकट की। स्वामी जी महाराज के वलिदान के लगभग ४ मास बाद, सन् १९२७ के अप्रैल मास में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की रजत जयन्ती मनाई गई। गुरुकुल के पुर्ननिर्माण के लिये धन का अध्यापकों तथा छात्रों द्वारा विशेष संग्रह किया गया और यह अवसर देश के तत्कालीन प्रमुख नेताओं द्वारा श्री स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए भी उपयुक्त समझा गया। उत्सव पर श्री महात्मा गांधी, जो पहले भी यहां पधार चुके थे के अतिरिक्त प्रथम बार श्री पं० मोतीलाल नेहरू श्री लाला लाजपत राय एवं महामना मालवीय जी प्रभृति पधारे थे।

लेखक को श्री पं० मोतीलाल नेहरू तथा लाला लाजपतराय जी के आतिथ्य एवं सुख-सुविधा का कार्य-भार सौंपा गया था। एक दिन पंडाल की ओर चलते हुए लाला जी ने मुझसे पूछा कि यहां से निकल कर आप क्या करोगे ? मैंने विनम्र उत्तर दिया कि मैं यहां आयुर्वेद महाविद्यालय में पढ़ रहा हूं और स्नातक बनकर आजीविका संपादन के साथ-साथ हमसे जो अपेक्षित है अर्थात् धर्म और देश की सेवा, उसे भी करने की इच्छा रखता हूं, जिसे बाद में मैंने तीन वर्ष सत्याग्रह काल में बारडोली (गुजरात) क्षेत्र में कार्य कर निभाया।

लाला जी ने मुझ से यह भी पूछा कि क्या दो हजार वर्ष पुरानी चिकित्सा-प्रणाली आज के युग के लिये उपयुक्त हो सकती है ? लाला जी का यह प्रश्न ठोस वास्तविकता को लिये हुए था मैंने उत्तर दिया कि आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित स्वास्थ्य के सिद्धान्त और चिकित्सा के मूलाधार सार्वकालिक हैं परन्तु हमारे आयुर्वेद महाविद्यालय में आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन अध्यापन का भी पूर्ण प्रबन्ध है।

मैंने साथ ही उन्हें स्मरण कराया कि महात्मा जी के असहयोग आन्दोलन

के आह्वान पर जिसमें मेडिकल कालेजों के वहिष्कार का भी समावेश था, आपने और डा० सत्यपाल जी ने लाहौर में "नेशनल मेडिकल कालेज" की भी स्थापना की है और उस कालेज के छात्र हमारे यहां आकर शवच्छेदन का अभ्यास करते हैं। गुरुकुल ने यह सुविधा उन्हें दे रखी है। इस पर लाला जी ने प्रसन्नता प्रकट की।

उसी वर्ष सन् १९२७ के अगस्त मास में तत्कालीन उत्तरप्रदेशीय सरकार ने देश में चिकित्सा पद्धति के विकास के लिये अवध चीफ कोर्ट के न्याय धीश जस्टिस गोकरणनाथ मिश्र के तत्त्वावधान में एक कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन में कुछ अन्य सदस्यों के अतिरिक्त कानपुर के प्रसिद्ध बैरिस्टर हाफिज हिदायत हुसैन और प्रख्यात वैद्य श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल पधारे थे। समझा जाता था कि ये दोनों महानुभाव किसी आड़े तरीके से गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय को किसी और संस्था के मुकाबले घटिया दिखायेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। कमीशन के स्वागत में एक सभा श्री वैद्य धर्मदत्त जी की अध्यक्षता में आयोजित की गई थी, जिसमें बैरिस्टर साहब उछल पड़े और सबके बीच खुला कह गये कि हमने आप जैसा सुसज्जित और वैज्ञानिक आधार पर स्थित किसी आयुर्वेद महाविद्यालय को नहीं पाया। कमीशन के प्रकाशित प्रतिवेदन में गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी।

श्री आचार्य रामदेव जी से जस्टिस साहब ने कहा कि सरकार आपकी संस्था को प्रचुर सहायता देना चाहती है जिससे आप इसकी और भी प्रगति कर सकें। परन्तु श्री आचार्य जी ने ही उत्तर दिया जो महात्मा मुन्शीराम जी ने यू० पी० के तत्कालीन ले० गवर्नर सर जेम्स मेस्टन को १९१६ में तथा भारत के वायसराय लोर्ड चेम्सफोर्ड को १९१८ में दिया था कि हमारे सिद्धान्तों के अनुसार हम आपसे सहायता न लेकर अपनी इस तुच्छ कुटिया में रहना ही पसन्द करेंगे। तब यह सहायता पास की एक संस्था को दे दी गई, जिसके प्रधान एक रायबहादुर और बाद में 'सर' के खिताब से मण्डित हो गये थे। एवं कुछ दिन वायसराय की कौंसिल के नामजद मेम्बर थे।

स्वराज्य मिलने पर सन् १९५० में प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद पधारे और गुरुकुल को एक लाख रुपये की ग्रांट प्रदान की, जिसे गुरुकुल ने सधन्यवाद प्रथम बार स्वीकृत किया।

१९५२ में, स्वराज्य मिलने के पश्चात् उत्तर प्रदेशीय सरकार ने आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा पद्धतियों की शिक्षा के लिये एक समिति का गठन किया। इसके अध्यक्ष कानपुर के डा० मुरारीलाल रोहतगी नियुक्त हुए, लेकिन नीति संचालक बनारस विश्वविद्यालय के २ अध्यापक श्री दत्तात्रेय वामन कुलकर्णी तथा श्री वैद्य राजेश्वर दत्त शास्त्री रहे। इस समिति ने गुरुकुल को ग्रांट इन एड न देने की सिफारिश की, जब तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १९३९ के "इण्डियन मैडिसिन एक्ट" के आधीन अपने आप को "बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन" से सम्बद्ध नहीं कर लेता। ऐसा कर लेने पर गुरुकुल विश्वविद्यालय की "फैकल्टी आव् आयुर्वेदिक मेडिसिन" का अस्तित्व समाप्त हो गया।

१९५५ में जब श्री चन्द्रभान गुप्त उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री थे, तब वह अपने अधिकारियों के साथ गुरुकुलोत्सव पर पधारें और उन्होंने उस समय प्रकट ही नहीं अपितु उद्घोषित किया कि वे हरिद्वार के दोनों आयुर्वेद महाविद्यालयों का एकीकरण कर एक विशाल संस्था बना देना चाहते हैं। उनके इस उद्देश्य के प्रतिवाद में दूसरी संस्था के अधिकारियों ने बड़ी भाग दौड़ की—विशेषकर भिन्न सम्प्रदायी होने के कारण, और वह कदम धरा रह गया। सन् १९५२ की गठित समिति की रिपोर्ट में भी इस सम्प्रदाय भिन्नता का वर्णन है। उधर तत्कालीन कुलपति पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने परिस्थिति के अनुकूल कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। पराधीनकालीन गुरुकुल की स्वतंत्र नीति उन्हें दबोचे रही।

एक पुनः अवसर आया जबकि ५-६ आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों ने हड़ताल कर मांग की कि उनकी संस्थाओं को किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाय। उनकी इस मांग में कुछ बल भी था। लगभग २ हजार आयुर्वेद तथा यूनानी डिस्पेंसरियां खोली गईं और उनके चिकित्सकों के चुनाव में

विश्वविद्यालय के स्नातकों को प्राथमिकता दी गई और बाद में बोर्ड के स्नातकों को।

जब श्री चरणसिंह सन् १९६९ में उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री बने तो उन्होंने संकल्प किया कि समग्र आयुर्वेद महाविद्यालयों को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाय और इस प्रकार की घोषणा भी उन्होंने विधान सभा में कर दी। कहा जाता है कि इससे पहले कि कोई संस्था इसका विरोध करे गुरुकुल के तत्कालीन कुलपति ने इस घोषणा के विरुद्ध मुख्य मन्त्री को तार भेज दिया। इस प्रकार पुनः गुरुकुल पिछड़ गया।

१९७४ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान स्वामी श्री इन्द्रवेश जी ने आयुर्वेद के छात्रों को लिखकर दे दिया कि यदि उत्तर प्रदेश सरकार आयुर्वेद महाविद्यालय अपने आधीन लेकर संचालन करना चाहे तो वे स्वीकृति प्रदान करते हैं।

मुख्यमन्त्री श्री हेमवतीनंदन बहुगुणा ने उत्तर प्रदेश के बोर्ड से सम्बद्ध ६ महाविद्यालयों में से ऋषिकुल, पीलीभीत और झांसी के आयुर्वेद महाविद्यालयों को सीधा सरकार के आधीन ले लिया और अन्य ३ छोटे और नवीन आयुर्वेद महाविद्यालयों को यथा-अतर्रा-बांदा और बरेली के नये आयुर्वेद महाविद्यालयों को पृथक् रखा। गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय भी इसी कोटि में आन पड़ा है। जबकि इसकी शान और गौरव का सिक्का समग्र भारत में ही नहीं, अपितु विदेश में भी फैला हुआ था, जिसे उ० प्र० की हाईकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार किया है।

गुरुकुल का आयुर्वेद महाविद्यालय अब कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। एक विशेष एक्ट बनाकर कानपुर विश्वविद्यालय के क्षेत्र को बहुत बढ़ा दिया गया और इन कालेजों को उससे बांधा गया। शिक्षा का स्तर और व्यवस्था कहां तक प्रभावित हो पाई है यह एक महान् प्रश्न है। गुरुकुल में कब से अनुसंधान कार्य तथा अनुस्नातक (पोस्ट-ग्रेजुएट) शिक्षण प्रारम्भ हो जाना चाहिये था, पर यह सब कुछ नहीं हो पाया।

अब प्रश्न है कि क्या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इसे अपने आधीन करने को तैयार है? स्थिति यह है कि एक दो बार यत्न किये गये जो शिथिल यत्न थे, पर ऐसा नहीं हो सका।

बनारस हिन्दू विश्वधिद्यालय से आयुर्वेद को "अण्डर ग्रेजुएट" पाठविधि और महाविद्यालय १९६० में समाप्त कर दिये गये। आयुर्वेदिक अनुसंधान और पोस्ट ग्रेजुएट कक्षाएं "इन्स्टीट्यूट आव् मेडिकल साइंसेज" के आधीन चल रही हैं। और यह सब "यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन" के आधीन संचालित है। केन्द्रीय सरकार का विश्वविद्यालय होने से सम्पूर्ण आर्थिक जिम्मेवारी शिक्षा तथा चिकित्सा के मंत्रालयों की है। वे आपस में आनुपातिक ढंग से अर्थव्यवस्था को जो कितने ही लाखों में है विभाजित कर लेते हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध "राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय" लखनऊ, जहाँ अण्डर ग्रेजुएट और पोस्ट ग्रेजुएट आयुर्वेदिक कथाएं हैं—इसका वार्षिक बजट ३३-३४ लाख का है। ऋषिकुल आयुर्वेद महाविद्यालय का १०-११ लाख का बजट है। गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय का बजट बहुत छोटा है और उसके लिए भी हायतोबा मची रहती है सरकार से अनुदान तैशुदा राशि से कम ही मिलता है। गुरुकुल का भाग अन्यत्र न्यून है।

अन्त में हमें यह देखना है कि जिन उद्देश्यों को समक्ष रखकर अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इस आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की थी और गुरुकुल विश्वविद्यालय के अन्तर्षत तीसरे संकाय (फैकल्टी) का निर्माण हुआ था, क्या वे उद्देश्य पूरे हो रहे हैं? उत्तर में निराशाजनक भाव है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियां ही नहीं अपितु समग्र जीवन-दर्शन में विकट परिवर्तन हो गये हैं। उन परिवर्तनों का मूल उद्देश्यों से सामंजस्य कर आयुर्वेद महाविद्यालय का नवविधान बनाना चाहिये। और वे दो रूप में हो सकते हैं—

१. आर्यसमाज के समग्र अधिकारी मिलकर प्रयत्न करें कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आयुर्वेद के संकाय को गुरुकुल विश्वविद्यालय के आधीन निर्माण की अनुमति प्रदान करे एवं केन्द्रीय तथा प्रदेशीय सरकारें

विशिष्ट अनुदान देवें। इस प्रकार गुरुकुल की उपाधियों की मान्यता बनी रहेगी। हाँ, गुरुकुल को भी एक बड़ी राशि अपने स्रोतों द्वारा लगानी पड़ेगी। तभी मूल उद्देश्यों को एक बड़ी सीमा तक चरितार्थ किया जा सकेगा। गुरुकुल विश्वविद्यालय को—जैसा कि श्री डा० राधाकृष्णन् के प्रधानत्व में स्थापित शिक्षा कमीशन—सन् १९४९ की रिपोर्ट के अनुसार अपनी विशेषताओं को कायम रखने का अधिकार रहेगा।

दूसरा रूप समग्र विकसित देशों में प्रचलित परिपाटी से है—अर्थात् उन देशों की समग्र मेडिकल फैकल्टियाँ सीधे सरकार के आधीन होती हैं। और राज्य सरकारें ही उनके सम्पूर्ण आय-व्यय के लिये जिम्मेदार होती हैं। चिकित्सा एवं उसकी शिक्षा को "स्टेट सबजेक्ट" माना जाता है। अमेरिका में १-२ संस्थाएं प्राइवेट हैं, परन्तु पश्चिम के अन्य देशों में एक भी स्वतन्त्र मेडिकल कालेज नहीं मिलेगा।

हाँ, उस अवस्था में गुरुकुल को आयुर्वेद महाविद्यालय से सम्बद्ध सब "एसेट्स" चल या अचल सरकार को सौंप देने पड़ेंगे।

अन्त में इतना ही लिखना अभीष्ट है कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा पवित्र उद्देश्य से स्थापित यह आयुर्वेद महाविद्यालय विकासोन्मुखी हो और इसकी समस्याएं गम्भीरता तथा तत्परता से सुलझाई जावें, जिससे भारतीय जनता एवं मानवता को लाभ पहुंचाया जा सके।

श्रद्धामय जीवन

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्रद्धानन्द जी की भारत को देन उनकी सत्य में अगाध श्रद्धा है। श्रद्धानन्द यह नाम ही उनकी उस भावना का परिचायक है। वे नित्य प्रति श्रद्धावान् थे और उसी में आनन्द मानते थे। उनके लिये सत्य और जीवन एक हो गये थे। सत्य ही जीवन था और जीवन ही सत्य था। उनकी मृत्यु उनके निर्भीक, अनथक प्रयत्नों के अमर चित्रों को अलोकित करती हुई एक प्रकाश किरण की तरह हमारे सामने आती है।

गुरुकुल की एक झांकी

ब्रह्मचारी गङ्गा तट पर पहुंचकर हाथ मुंह धोते और साफ करते थे। उसके पश्चात् या तो रेत में कबड्डी खेलते थे और दण्ड-बैठक करते थे अथवा वर्षा ऋतु होने पर अखाड़े में कुश्ती लड़ते थे। व्यायाम हमारी दिनचर्या का मुख्य अंग होता था। दो-दो सौ दंड बैठक निकालना साधारण बात थी। व्यायाम का कार्यक्रम लगभग एक घण्टा तक चलता था।

इस कार्यक्रम में विशेष रुचि का यह भी कारण था कि अधिष्ठाता लोग स्वयं भी व्यायाम में पूरा हिस्सा लेते थे। आचार्य गङ्गादत्त जी तो व्यायाम के बहुत ही पक्षपाती थे और किसी काम से छुट्टी मिल सकती थी परन्तु उनके प्रबन्ध में व्यायाम से छुटकारा पाना कठिन था। वह व्यायाम के सम्बन्ध में प्राय: निम्नलिखित श्लोक कहा करते थे—

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामभ्यर्दितस्य च,
व्याधयो नोपसर्पन्ति, पन्नगारेरिवोरगा: ।

जिस मनुष्य का शरीर व्यायाम से थकाया गया है और जिसे पैरों के नीचे मसला गया है। उसके पास रोग इस प्रकार नहीं आते जिस प्रकार गरुड़ के ास सर्प नहीं आते।

वह स्वयं अपने लिये इसी सिद्धान्त का पालन करते थे। बीमारी में भी, और वे उन दिनों बहुत कम बीमार होते थे, कुछ न कुछ व्यायाम किया करते थे। हम लोग भी बुखार या अपच जैसे साधारण रोगों में व्यायाम से मुक्त नहीं किये जाते थे। कुश्ती न सही दण्ड बैठक ही सही। वह भी न हो सके तो कबड्डी ही सही, व्यायाम से पूरी छुट्टी मिलना असम्भव था।

(मेरे पिता : संस्मरण नामक पुस्तक से)

सामाजिक और धार्मिक सुधारक

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

श्रद्धानन्द जी का स्थान सामाजिक और धार्मिक सुधारकों में बहुत ऊंचा है। उन्होंने वैदिक-संस्कृति का पुरुत्थान करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए जो कुछ किया है वह हम भूल नहीं सकते। इस महान् आत्मा को मैं इस सन्देश से श्रद्धांजलि दे रहा हूं।

स्फूर्ति के स्रोत

श्री मदनमोहन मालवीय

श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की पुण्य-स्मृति का सन्मान करने में मैं हृदय से आपके साथ हूं। उनका उत्कृष्ट उदाहरण युवक पीढ़ियों के लिए स्फूर्ति का ऐसा स्रोत रहेगा, जो सदा युवकों में आत्मत्याग, तपस्या और कष्ट सहन की भावना का विकास करने वाला और कर्तव्य-पालन में उत्साह और साहस का संचार करने वाला होगा।

भव्य-मूर्ति

श्री रेम्जे मेकडानल्ड

वर्तमान काल का कोई कलाकार यदि भगवान ईसा की मूर्ति बनाने के लिए कोई जीवित मॉडल सन्मुख रहना चाहे तो मैं इस भव्य मूर्ति की ओर इशारा करूंगा। यदि कोई मध्यकालीन चित्रकार सेंट पीटर के चित्र के लिये नमूना मांगेगा तो मैं उसे इस जीवित मूर्त के दर्शन करने की प्रेरणा करूंगा।

क्रांतिकारी व्यक्तित्व के स्वामी महात्मा श्रद्धानन्द

जगन्नाथ विद्यालंकार

आज से ठीक पचास साल पहले कांग्रेस का अधिवेशन गोहाटी में हुआ था। उस समय स्वागताध्यक्ष के विशेष आग्रह पर अपने बलिदान से कुछ ही दिन पूर्व अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने देशवासियों के नाम अपना संदेश दिया था—

"भारत की भावी सुख-समृद्धि हिंदू-मुस्लिम एकता पर निर्भर है।' आज भी यह संदेश उतना ही सच है, जितना कल था।

सामाजिक एकता राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत स्वामी श्रद्धानन्द ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रेय मार्ग से श्रेय मार्ग की ओर बढ़ा जा सकता है और यही जीवन की वास्तविक प्रगति का मार्ग है।

२३ दिसम्बर, १९२६ को सायं काल घटित बलिदान की घटना के अमर नायक स्वामी श्रद्धानन्द के और घटना-स्थल का दिल्ली का बर्नबैश्चन रोड (अब श्रद्धानन्द बाजार) स्थित स्वामीजी का निवास स्थानत्य हमारे का नहीं मालूम था कि उसने कितनी बड़ी नासमझी की है। कमरे के बीच में धर्मसिंह

सेवक अपनी जख्मी जांघ को दबाये बैठा था और पलंग के एक कोने में श्री धर्मपाल विद्यालंकार के शिकंजे में खूनी कातिल तड़फड़ा रहा था। तत्काल ही उनके निजी चिकित्सक डा० अन्सारी और पुलिस को खबर दी गई। डा० अन्सारी पहले पहुंचे और जांच-पड़ताल करके बलिदान की पुष्टि कर दी। पुलिस आध घंटे बाद आई और उसने कातिल को निरस्त्र करके उसके हाथ-पैरों में हथकड़ी-बेड़ियां डाल दीं। दुबला-पतला, पकी हुई दाड़ी-मूंछ वाला अधेड़ उम्र का कातिल अब्दुल रशीद जब खड़ा हुआ तो दर्शक अपने कल्पना लोक से एकदम नीचे गिरे, क्योंकि सभी यह सोच रहे थे कि हत्यारा खूब हट्टा-कट्टा, तगड़ा जवान होगा।

विशाल सुडौल काया, दिव्य मुखमंडल, प्रशस्त भाल, उन्नत कंधे, आजानु बाहु, धीरता गंभीरता प्रदर्शित करने वाले नपे-तुले कदम, भगवे वस्त्रों से सुशोभित देह, हाथ में डंडा पकड़े स्वतंत्रता-संग्राम में देश का नेतृत्व करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी का यह कायाकल्प एक ही दिन में नहीं हो गया। अपने पुलिस अधिकारी पिता की प्रेरणा से महर्षि दयानन्द के दर्शन एवं उपदेश सुनने वाले युवक मुन्शीराम को अमर हुतात्मा श्रद्धानन्द बनने में अनेक कुर्बानियां देनी पड़ीं। इसलिए परम्परागत रूढ़ियों का त्याग करके संन्यास ग्रहण करते हुए उन्होंने कहा था—"मैंने अपने जीवन के सब निर्णय केवल श्रद्धा के आधार पर किए थे, इस कारण मैं अपना नाम श्रद्धानन्द रखता हूं।" महात्मा गांधी इसी 'श्रद्धा' को अन्तरात्मा की आवाज कहते थे।

स्वतंत्रता के पश्चात् स्वामी जी की महत्ता, उनके बलिदान की अपूर्वता तथा उनके धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक विचारों-कार्यों का कुछ विस्मरण हो गया है। ऐसी हालत में राष्ट्र के विश्वकर्माओं का पुण्य-स्मरण जाति, धर्म व देश के लिए संजीवनी सिद्ध हो सकता है। आजादी के बाद निरंतर देश प्रगति के मार्ग पर बढ़ रहा है, निश्चय ही कई कठिनाइयां सामने आ रही हैं, मनोवृत्ति सही न होने के कारण कई बुराइयां भी पनप रही हैं, उनके समाधान के कई उपाय भी किए जा रहे हैं। ऐसे में स्वामी श्रद्धानन्द का स्मरण हमें हर बुराई से संघर्ष करके देश को प्रगति की उत्तरोत्तर धारा में बढ़ाने में ठोस प्रेरणा दे सकता है।

गुरुकुल कांगड़ी – शैक्षणिक जगत् में एक क्रांति

इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही स्वामीजी ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय रूपी एक नन्हा-सा पौधा रोपा था और अपने मन, प्राण, रक्त से इसे पल्लवित-पुष्पित किया था। आधुनिक समाजवाद के जनक कहे जाने वाले मार्क्स के विचार जब पुस्तकों में ही बंद पड़े थे और रूस, चीन आदि देशों में समाजवाद के उदय होने से पहले ही दयानन्द के वैदिक समाजवाद की विचारधारा का मूलाधार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को कुलपिता श्रद्धानन्द जी ने साकार कर दिखाया था। समाजवाद का मूल आधार गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली ही है, जिसमें राजा-रंक सभी के बालक-बालिकाओं को शिक्षा प्राप्ति के लिए बिना किसी भेदभाव के समान सुविधाएं और अवसर दिए जाते हैं। इसीलिए गुरुकुल एक संस्कार का ही नाम नहीं वरन् एक आंदोलन, विचारधारा और भावना का ही नाम है। तभी वैदिक मैगजीन (गुरुकुल से प्रकाशित पत्रिका) के श्रद्धालु पाठक महान् रूसी साहित्यकार टालस्टाय ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

सर्वप्रथम स्वामीजी ने अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल के अर्पण किया। स्वामीजी ने समाजवादी समाज के निर्माण तथा राष्ट्र के चरित्र-गठन के लिए गुरुकुल की स्थापना की और इसके लिए तीस हजार रुपए संग्रह करने के लिए गृहत्याग किया। धन की वर्षा करने वाली वकालत को ठुकराया। अपना सद्धर्म-प्रचारक प्रेस भी दे दिया और अन्त में लाखों की संपत्ति अपनी विशाल हवेली भी गुरुकुल को अर्पण करके सर्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति दी।

स्वामीजी की सर्वहितकारी प्रवृत्तियों तथा विशालहृदयता के तीव्र आकर्षण का ही यह फल था कि राजद्रोही समझे जाने वाले गुरुकुल में छोटे अंग्रेज अधिकारी से लेकर वाइसराय तक बीहड़ जंगल में खिंचे चले आते थे। लेबर पार्टी के नेता (जो बाद में ग्रेट ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बने) सर रैन्जे मैकडान्ल्ड ने गुरुकुल और स्वामीजी को देखने के बाद कहा था कि यदि ईसा को देखना हो तो गुरुकुल में जाकर स्वामी श्रद्धानन्द को देखो।

संगीनों के सामने

आर्यसमाज के माध्यम से सामाजिक क्षेत्र में और गुरुकुल की स्थापना से

शिक्षा के क्षेत्र में महान् कीर्तिमान स्थापित करके अंग्रेजों की साम्राज्यवादी जंजीरों में जकड़े भारत की आजादी के लिए स्वामीजी राजनीति के रणक्षेत्र में जा डटे। उनके लिए राजनीति जाति, धर्म व राष्ट्र की सेवा का एक साधन था, सत्ता प्राप्ति की लिप्सा पूर्ति का नहीं। इसीलिए गांधी जी के हरिजनोद्धार आंदोलन के शुरू होने से पहले ही स्वामी जी ने दलितोद्धार आंदोलन को जागृत और संगठित किया था। जलियांवाला बाग हत्याकांड से मर्माहत पंजाब और भारत मां की कराह को दूर करने के लिए देश में निर्भयता एवं नव-जीवन का संचार करके अमृतसर कांग्रेस में स्वागताध्यक्ष का कांटों भरा ताज पहना।

प्रथम विश्व युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को स्वराज्य देने के बड़े-बड़े आश्वासन दिए थे। लेकिन १९१८ में युद्ध समाप्ति के वाद रोटी की आशा दिलाकर पत्थर के रूप में रौलट एकट भेंट किया गया। अंग्रेजों के विश्वासघात के कारण देश भर में असंतोष और आक्रोश की ज्वाला धधक उठी। स्वामीजी ने दिल्ली में गांधी जी से भेंट की और उन्हें सत्याग्रह आंदोलन में पूर्ण सहयोग का वचन दिया। गांधी जी की वाइसराय से वार्ता असफल हो जाने पर देश भर में रौलट एकट विरोधी सत्याग्रह शुरू हो गया। दिल्ली में इस सत्याग्रही सेना के प्रथम सैनिक और मार्ग दर्शक स्वामीजी बने।

दिल्ली में ही एक जनसभा स्वामीजी के सभापतित्व में २९ मार्च, १९१९ की शाम को हुई जिसमें ३० मार्च से पूर्ण हड़ताल और देश कल्याण के लिए उपवास रखने की सूचना दी गई।

अगले दिन दिल्ली में पूर्ण हड़ताल के कारण हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी सम्प्रदायों के लोगों ने अपनी-अपनी दुकानें बंद रखी। दूधियों, हलवाइयों तक ने अपने दूध मिठाइयों को बच्चों में बांट दिया। धीरे-धीरे जनता सड़कों पर आ गई और ट्राम, कारों आदि पर चलने वाले सवार लोगों से नीचे उतर कर चलने की प्रार्थना की। समस्त यातायात ठप्प हो गया। दिल्ली स्टेशन पर दुकानें बंद करवा रहे कुछ स्वयंसेवक पुलिस द्वारा पकड़ लिए गए। इस गिरफ्तारी की खबर फैलने पर जनता स्टेशन पर इकट्ठी हो

गई और अपने साथियों की रिहाई की मांग करने लगी। रिहाई के बदले गौरी फौज और पुलिस ने मिलकर भीड़ को गोलियों से भून डाला। हताहत लोगों को सिपाहियों ने कपनी बाग में ले जाकर बंद कर दिया। अब जनता कम्पनी बाग के दरवाजे पर इकट्ठी होकर मृतकों, आहतों को देने की मांग करने लगी। पुलिस ने पुनः तैश में आकर जनता पर गोली चलाई और मृतकों को घसीटकर बाग में ही बंद कर दिया।

शांति से आयोजित प्रार्थना दिवस इस प्रकार रक्तपात में बदल गया। पीपल पार्क में शाम को चार बजे एक सभा शुरू होनी थी, वह अढ़ाई बजे से ही स्वामी जी के सभापतित्व में शुरू हो गई। फौज ने जनता को चारों ओर से घेर रखा था। सभी सम्प्रदायों के कट्टरपंथी नेता इस सभा में मौजूद थे। स्वामी जी ने सभी को शांत, स्थिर व भयमुक्त रहने का उपदेश दिया। सभा समाप्ति पर सायंकाल के समय बीस-पच्चीस हजार की अपार भीड़ एक कतार में अनुशासित सैनिकों की तरह 'भारत माता की जय' 'हिंदू-मुसलमान की जय' के नारे लगाती हुई फव्वारे से होती हुई घंटाघर की ओर स्वामी जी के नेतृत्व में चल पड़ी। जलूस को घेरे हुए मशीनगनों से लैस घुड़सवार सैनिक चल रहे थे। अचानक कम्पनी बाग के सामने खड़ी गोरखा फौज के किसी सैनिक ने घबराहट में गोली चला दी। गोली चलते ही नारे लगाने में मस्त जनता विक्षुब्ध हो उठी। स्वामी जी लोगों को वहीं स्थिर, शांत खड़े रहने का आदेश देकर सैनिकों की कतार के आगे जा खड़े हुए और धीर गंभीर वाणी में पूछा—तुमने गोली क्यों चलाई ? प्रश्न का उत्तर देने के स्थान पर सैनिकों ने बंदूकों की संगीनें आगे बढ़ाते हुए कहा—'हट जाओ, नहीं तो हम छेद देंगे।' स्वामी जी एक कदम और आगे बढ़ गए। अब संगीन की नोक स्वामी जी की छाती को छू रही थी। चुनौती सी देते हुए स्वामी जी ने कहा —मारो, और वही खड़े रहे। यह वीरतापूर्ण दृश्य लगभग एक मिनट तक रहा।

तभी एक अंग्रेज अधिकारी घोड़े पर भागता हुआ वहां आ पहुंचा। उसे देखते ही सैनिकों ने अपनी संगीनें झुका लीं। स्वामी जी ने उस अंग्रेज

अधिकारी से पूछा—गोली क्यों चलाई गई ? उसने अस्पष्ट सा उत्तर दिया कि गोली भूल से चल गई थी। साथ ही उसने सैनिकों को हटाकर जलूस के लिए रास्ता देने का आदेश दिया। यह जन-प्रयाण फिर चल पड़ा और स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुंचा। वहां से धीरे-धीरे सभी लोग अपने-अपने घर चले गए।

मस्जिद से वेद-मंत्रों का गान

दिल्ली में घटी इन घटनाओं से सारे देश में राजनैतिक, सामाजिक और मानसिक क्रांति पैदा हुई। दिल्ली की गलियों में बहे खून में हिंदू-मुसलमान दोनों का खून था। दोनों के खून ने मिलकर चमत्कार कर दिखाया। 'हम' शब्द के 'ह' से हिंदू और 'म' से मुसलमान का ही बोध होता था। शहीदों की अर्थियों और जनाजों के जलूस साथ-साथ निकलते थे, जिनमें लाखों हिंदू-मुस्लिम कंधे से कंधा मिलाकर चलते थे, कोई भेदभाव नहीं समझते थे। दिल्ली की दो महान् विभूतियों स्वामी श्रद्धानन्द जी और हकीम अजमल खां का प्रथम साक्षात्कार इन्हीं मातमी जलूसों में हुआ था। ४ अप्रैल को दोपहर बाद नमाज के बाद हुए जलसे में इस साम्प्रदायिक एकता और भाईचारे की भावना की चरम परिणति देखने को मिली, जब मौलाना अब्दुल्ला चूड़ीवाले ने ऊंची आवाज में 'स्वामी श्रद्धासन्द की तकरीर होनी चाहिए' ऐसी मांग उठाई। 'नार-ए-तकयीर' से जामामस्जिद की दीवारें और आकाश गूंज उठे। दो-चार जोशीले नौजवान स्वामी जी को उनके नया बाजार स्थित मकान से लिवा लाये। 'अल्लाहो-अकबर' के जयघोष के बीच स्वामी जी जामा मस्जिद की वेदी पर खड़े हुए। उन्होंने ऋग्वेद के एक मंत्र से अपना भाषण प्रारम्भ किया और 'ओं शांतिः - शांतिः—शांतिः' से समाप्त भारत ही नहीं, इस्लाम के इतिहास में यह प्रथम घटना थी कि किसी गैर मुस्लिम ने मस्जिद के मिम्बर से बाज किया हो।

इस सब के बावजूद ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो एकता और भाईचारे के वातावरण को खंडित करने की कोशिशें अपने स्वार्थों से अथवा अंग्रेजों व उनके फिरकापरस्त, मजहबी जनून वाले कुछ लोग तभी से करने

में लगे रहते थे। 'हम' की भावना को जल्द ही पलीता लगा दिया गया जिसका वीभत्स और घिनौना रूप १९४२ के साम्प्रदायिक दंगों में देखने को मिला। इसके समाधान के लिए गांधी जी को २२ दिन का ऐतिहासिक उपवास भी करना पड़ा था। ब्रिटिश हकूमत द्वारा भारतीय जनता के मिले-जुले खून से सींची गई मनोहर वाटिका को साम्प्रदायिक दंगों ने तहस-नहस कर दिया। शुद्धि सभा के माध्यम से इस क्रांतिकारी व्यक्तित्व के स्वामी महान् आत्मा ने देश की स्वतंत्रता, अस्पृश्यता व जातपात के भेदभाव को मिटाकर साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए एक मजबूत नींव रखी। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से यह देख लिया था कि मानवों द्वारा बनाये गए भेदभाव खत्म करने का एकमात्र उपाय अपने को हिंदू, मुस्लिम या ईसाई न मानकर मानव समझने की सोच पैदा करना है, एक ऐसा मानव जो निरन्तर श्रेष्ठता की ओर बढ़कर श्रेष्ठ अर्थात् 'आर्य' स्तर तक जा पहुंचेगा। उसके लिए सभी मित्र होंगे। वह सभी का सहायक होगा। एक सच्चे 'आदमी' के निर्माण की यह कल्पना थी यह !

'सच्चे-आदमी' के विकास के लिए संघर्ष और बलिदान

आर्य (सच्चा अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति) के स्तर तक हर प्राणी को पहुंचाने की तमन्ना रखने वाले आदमी को बड़े से बड़ा संघर्ष करने के लिए तैयार रहना चाहिए, इससे स्वामी श्रद्धानन्द अच्छी तरह वाकिफ थे। शायद इसीलिए जीवन भर उन्होंने सभी कार्य श्रद्धा के आधार पर किए थे। एक लगन के साथ। लेकिन कुछ लोगों को यह स्वीकार नहीं था। उनके सद्भाव को विषभाव बनाकर उनके खिलाफ मजहबी जजबात भड़काये गए जिसका घृणित दुष्परिणाम स्वामी जी के हत्याकांड में हुआ। उनकी शहादत के बाद भी हमने उनके बलिदान से सबक नहीं सीखा जिससे देश को विभाजन के कुफल भोगने पड़े।

गांधी जी के शब्दों में—

"स्वामी श्रद्धानन्द एक सुधारक थे। कर्मवीर थे, वाक्शूर नहीं। संकट आने पर घबराते नहीं थे। वीर सैनिक रणांगन में मरना पसंद करता है, रोगशैय्या पर नहीं। ईश्वर उनके लिए धर्मवीर हुतात्मा की मौत चाहते थे।

यद्यपि वे उस समय रोग शय्या पर थे पर एक घातक के हाथों से उनके देह का अन्त हुआ।

मृत्यु किसी भी समय सुखदायक होती है। किन्तु वह उस वीर के लिए दुगनी सुखदायक होती है, जो अपने ध्येय या सत्य के लिए मरता है। इसलिए मैं उनकी मृत्यु पर शोक नहीं मना सकता। उनसे तथा उनके अनुयायियों से मुझे एक प्रकार की ईर्ष्या होती है। गीता के शब्दों में "सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्" "धन्य और सौभाग्यशाली हैं, वे वीर जिनको ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।"

नेताओं की नहीं सेवकों की जरूरत है

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी जीवनी 'कल्याण मार्ग का पथिक' में गांधीजी की तरह, दयानन्द का शिष्य होने के नाते सत्य-व्रत का पालन किया और अपने जीवन वृत्त को एकदम साफ-साफ शब्दों में जनता के हित के लिए लिख दिया, पूरी ईमानदारी के साथ! सचमुच कितना महान् व्यक्तित्व था वह! एक स्थान पर स्वामीजी लिखते हैं कि आर्य जाति को नेताओं की आवश्यकता नहीं है, बल्कि सच्चे सेवकों की जरूरत है, कर्मवीरों की—जिन्हें प्रसिद्धि की चिंता न हो, जो सिर्फ नींव का पत्थर बनना जानते हों। मठमंदिरवाद, ब्रह्मणवाद, पोगापंथवाद, कष्मुल्लावाद आदि बुराइयों से वह सदा संघर्ष करते रहे। आज हमें पुनः यही व्रत लेना है कि आर्यसमाज से इन बुराइयों को दूर खदेड़ देना है और दयानन्द, श्रद्धानन्द, पं० लेखराम, लाला लाजपतराय, स्वामी दर्शनानन्द, समर्पणानन्द, नारायण स्वामी, भगवतदत्त, और इन सबके प्रेरणा-स्रोत प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द के स्वप्नों का समाज बनाने के लिए भारतीय संस्कार की नवीन संदर्भ में पुनः स्थापना का कार्य प्रारम्भ करना है। तभी हम स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान के प्रति दो सच्चे आँसू बहा सकेंगे, अन्यथा हमें इसका भी अधिकार नहीं है।

———

श्रद्धांजलियां

नव भारत का पथप्रदर्शक

राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद

स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्रथम परिचय का सौभाग्य मुझे भागलपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय प्राप्त हुआ। उस समय तक स्वामी जी ने संन्यास नहीं लिया था और महात्मा मुन्शीराम जी के नाम से ही प्रसिद्ध थे। गुरुकुल की स्थापना करके राष्ट्रीय-पद्धति से शिक्षा देना उन्होंने बहुत पहले ही आरम्भ कर दिया था और गुरुकुल का काम शान से चल रहा था। आप के हिन्दी प्रेम और हिन्दी सेवा को देखकर ही सम्मेलन ने सभापति के पद पर आपका निर्वाचन किया था। सम्मेलन को जिस उत्तमता के साथ आपने निभाया, वह हमें आज भी अच्छी तरह याद है। पर स्वामी जी के गुणों को भारतवर्ष ईसवी सन् १६१६ और उसके बाद ही पूरी तरह से जान सका। स्पष्टवादिता और निर्भीकता के वे मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनकी निर्भीकता, साहस व स्पष्टवादिता के गुणों को अंग्रेजी सरकार अच्छी प्रकार जानती थी। परन्तु इन गुणों को उनके स्वदेशवासी सहयोगी कार्यकर्ता भी तीव्रता से अनुभव करते थे। जो लोग काले कानून के विरोधी आन्दोलन के समय दिल्ली के

चाँदनी चौक में मौजूद न भी थे, उनके हृदय-पट पर भी स्वामी जी की वह निर्भीक मूर्ति अमिट रूप से चित्रित है। उस समय स्वामी जी ने अंग्रेजी गोलियों और संगीनों के सामने अपना सीना खोल कर हृदय की निर्भीकता तथा उच्चता का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित किया। उनकी उस शुद्ध तथा उच्च भावना ने जामा-मस्जिद के मिम्बर पर से उनसे उपदेश करवाया और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का मनोरम दृश्य दिखलाया और उसी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता और निर्भीकता के कारण आततायी के हाथों से शहादत प्राप्त की। भारत के आधुनिक इतिहास में स्वामी जी का स्थान प्रथम सांस्कृतिक पथ-प्रदर्शक का है। जिनको स्वामी जी के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, उनके लिये स्वामी जी के जीवन वृत्तान्त को पढ़ना ही मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने वाला है। स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना करके ब्रह्मचारियों के शिक्षण का ही प्रबन्ध नहीं किया, प्रत्युत उनका सारा जीवन ही देश के लिये एक महान् गुरुकुल का काम कर रहा है और करता रहेगा।

———

निर्भीकता और साहस का पुञ्ज

श्री जवाहरलाल नेहरू

१९२६ के अन्त में यह एर्ष एक भारी दुःखद दुर्घटना से सर्वत्र अन्धकारमय हो गया। इस दुर्घटना से सम्पूर्ण भारतवर्ष रोष व घृणा से काँप उठा। इस घटना से पता चलता है कि साम्प्रदायिक जोश हम लोगों को कितना नीचे गिरा सकता है। रोगशय्या पर पड़े हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी की एक धर्मान्ध युवक द्वारा हत्या कर दी गई। जिस वीर पुरुष ने गोरखों की संगीनों के सामने अपनी छाती अड़ा दी थी और जो उनकी गोलियों का मुकाबिला करने के लिये आगे बढ़कर खड़ा हो गया था, उस वीर पुरुष की ऐसी मृत्यु ?

लगभग आठ वर्ष पूर्व आर्यसमाज के इस प्रमुख नेता ने देहली की शानदार जामा-मस्जिद की वेदी पर खड़े होकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सम्मिलित विशाल जन-समुदाय को 'हिन्दु-मुस्लिम एकता' तथा भारतवर्ष को स्वतन्त्रता का सन्देश दिया था और उस विशाल समुदाय ने भी 'हिन्दू-मुसलमानों की जय' के नारों से उनका स्वागत किया था तथा मस्जिद से बाहर देहली की गलियों में हिन्दू व मुसलमान, दोनों ने उसको अपने खून से अधिक संपुष्ट किया था। आज उनकी अपने देश-भाई द्वारा हत्या कर दी गई। वह धर्मान्ध व्यक्ति निःसन्देह यह समझता था कि वह एक ऐसा पुण्य कार्य कर रहा है, जो उसे स्वर्ग में पहुंचा देगा।

विशुद्ध शारीरिक साहस का अथवा किसी भी शुभ कार्य के लिये शारीरिक कष्ट सहन करने एवं उस कार्य के लिए मृत्यु तक की परवाह न करने वाले गुणों का मैं सदा से प्रशंसक रहा हूं। मैं समझता हूं कि हम सभी व्यक्ति ऐसे अद्भुत साहस की प्रशंसा करते ही हैं। स्वामी श्रद्धानन्द में इस प्रकार का निर्भीकतापूर्ण साहस आश्चर्यजनक मात्रा में विद्यमान था। वृद्धावस्था में भी उन की उन्नत सीधी आकृति तथा संन्यासी वेश में उच्च भव्यमूर्ति, लम्बा कद, शाहाना शकल, चमकती हुई अन्तर्भेदिनी आँखें और कभी-कभी दूसरों की निर्बलताओं पर मुख पर आजाने वाली झुंझलाहट की झलक— इस सजीव मूर्ति को मैं कैसे भूल सकता हूं? प्रायः यह तस्वीर मेरी आंखों के सामने आ जाती है।

———

दलितों के उद्धारक स्वामी श्रद्धानन्द

श्री सी. एफ. एंड्रूज़

इस जीवन में बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें मैं उतना प्रेम करता हूं

जितना स्वामी श्रद्धानन्द जी को करता था। हमारी स्वच्छ, निर्मल तथा प्रगाढ़ मैत्री में कदाचित् ही धुंधलापन आया हो। उनके उच्च चरित्र की ही महत्ता थी जिसने उनके प्रति मेरे प्रेम को सच्चा और गहरा बनाया था। यह जानकर मैं बहुत प्रसन्न होता था कि स्वामी जी भी मुझसे प्रेम करते हैं।

इस 'बलिदान-जयन्ती' के अवसर पर, श्रद्धानन्द ट्रस्ट के मन्त्री जी की अपील, मुझ तक महात्मा गांधी जी के साथ वर्धा आश्रम में ठहरे हुए पहुंची है। आज मैं २० वर्ष पूर्व के उस दिन की ओर आंख उठाकर देखता हूं, जब मैंने पहले पहल महात्मा गांधी जी से गुरुकुल हरिद्वार के उस तपस्वी महात्मा मुंशीराम जी के सम्बन्ध में बातचीत की थी। दक्षिण अफ्रीका के प्रिटोरिया में जब हम आपस में बातचीत कर रहे थे तो बातचीत के अन्तर्गत महात्मा गांधी गुरुकुल और महात्मा मुंशीराम जी के प्रति प्रकट किये गए मेरे उत्साह पर बीच-बीच में मुस्करा उठते थे। महात्मा गांधी उस समय की प्रतीक्षा में थे जबकि वे गुरुकुल को देखने का प्रसन्नतादायक अवसर प्राप्त करेंगे। हम दोनों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि संभव हुआ तो हम दोनों एक साथ ही महात्मा मुंशीराम जी से भेंट करेंगे।

इस जयन्ती के पुनीत अवसर पर जो संदेश मैं देना चाहता हूं वह बहुत सीधा-साधा है और मुझे आशा है कि वह सन्देश प्रत्येक आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य और उसके द्वारा शेष भारत तक पहुंचेगा। मैं यह भी चाहूंगा कि यह संदेश समुद्र पार समस्त भारतवासियों तक पहुंचे। भारत से बाहर आर्यसमाज में मेरे बहुत से दोस्त हैं, जो मुझे इस लिये प्रेम करते हैं कि मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी को जानता और उन्हें प्रेम करता था। मेरा संदेश यह है कि स्वामी श्रद्धानन्द एक अत्यन्त स्निग्ध और उदार हृदय रखते थे। जब कभी गरीबों, दुखियों और दलितों के नाम पर उनके हृदय को अपील की जाती थी तो वह अपील उनके लिये अपरिहार्य हुआ करती थी। इसलिये जब-जब बलिदान जय-

न्ती आये तब-तब उनके सच्चे प्रेमियों का ध्यान गरीबों की ओर, जिन्हें वह प्यार करते थे, जाना चाहिए और उन गरीबों को भी परमात्मा के बच्चे समझना चाहिये।

———

अनुराग के आराध्य देवता

श्रीमती सरोजिनी नायडू

मेरी स्मृति और मेरे अनुराग के आराध्य देवता स्वामी श्रद्धानन्द वर्तमान सन्तति के सन्मुख एक ऐतिहासिक मूर्ति के रूप में विराजमान हैं। मैं सदैव अनुभव करती हूं कि स्वामी श्रद्धानन्द भारत के वीरकाल की एक दिव्य विभूति थे। अपनी भव्य मूर्ति और ऊंचे व्यक्तित्व के द्वारा वह अपने साथियों में देवता की नांई रहा करते थे। एक समय वह एक बड़े शिक्षा-केन्द्र (गुरुकुल कांगड़ी) के मुख्याधिष्ठाता थे। यद्यपि उन्होंने कभी किसी बड़े विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी तो भी वह अपने जीवन की शहादत की अन्तिम घड़ियों तक साहस और कर्मयोग की अनुपम मूर्ति रहे और भारतीय जीवन के धार्मिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में और राष्ट्र-सुधार के कार्यों में इन गुणों का सुन्दर परिचय देते रहे। मानव-समाज की सेवा के सम्बन्ध में उनके उच्च भावों का मैं बहुत आदर करती हूं।

———

निर्भय वीर सेनापति

श्री विधुशेखर भट्टाचार्य

स्वामी श्रद्धानन्द एक ऐसे पुरुष थे जिन्हें 'यथावादी तथाकारी' कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की बुराइयों का नाश करने में वह एक निर्भय योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्त में मातृभूमि की सेवा के लिए अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने अपने जीवन का भी मोह नहीं किया।

———

प्राणीमात्र का प्रेमी

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन

प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान को अनेक वर्ष हो गए। गुरुकुल की स्थापना कर और उस में हिन्दी को मुख्य स्थान देकर उन्होंने शिक्षा-सम्बन्धी दूरदर्शिता और सच्ची राष्ट्रीयता का रास्ता दिखाया था। उनकी सात्विक सरलता, सिद्धान्तों में दृढ़ता, देश, मानव-समाज तथा प्राणी-मात्र के लिए सच्चा प्रेम और स्वभाविक निर्भयता आदि गुणों की छाप आज भी मेरे हृदय पर अंकित है और मेरे जीवन की सुरक्षित सम्पत्ति है।

———

असीम साहस की मूर्ति

श्री प्रकाश

मैं अपने आप को इस बात से गौरवान्वित समझता हूं कि स्वामी जी की पुण्य स्मृति में भी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने का अवसर दिया गया है। मुझे तो स्वामी जी के अनेक गुणों में उनका असीम साहस सब से अधिक आकर्षित करता रहा है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक साहस व उत्साह से वह जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कार्य करते रहे। उनका सात्विक हठ बहुत ही प्रिय था। उन का सारा जीवन वीरोचित था और अन्त में भी उन्हें वीरगति ही मिली। ऐसे ही महापुरुष हमारे देश का सिर इस गिरी अवस्था में भी उन्नत किए हुए हैं।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं, श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं, मम तेजोऽशसंभवम्॥

———

स्वामी श्रद्धानन्द की जय

श्री हर दयाल

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी आर्यसमाज की महातमा-पार्टी के नेता थे। वह स्वयं उच्च वर्ण के हिन्दुओं में से थे। परन्तु उन्होंने दलित-जातियों को उच्च जाति के अत्याचारों से मुक्त कराने में किंचिन्मात्र भी संकोच नहीं किया। उन्होंने अपना सारा जीवन मनुष्य-मात्र की सेवाओं में अर्पित किया

हुआ था। वह सच्चे हिन्दू थे। उन्होंने अस्पृश्यता और सामाजिक विषमता जैसी उन अहिन्दू दुर्भावनाओं तथा रीति-रिवाजों को, जो कि मध्यकाल के ब्राह्मणों के अज्ञान के कारण पैदा हो गए थे, अपने हृदय से निकाल दिया था।

कुछ समय के लिए उन्होंने कांग्रेसमैन के रूप में भी काम किया। परन्तु अन्त में उन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दू-जाति के सामाजिक और धार्मिक सुधार करने में लगा दिया। वह वैदिक संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ थे। उन्होंने अपने जीवन का चरम भाग दलित-जाति के उद्धार के काम में अर्पित किया था। उन का वैदिक धर्म में अटूट और अदम्य विश्वास था। वह वैदिक धर्म के निर्भीक प्रचारक थे।

पौराणिक मूर्तिवाद के प्रचारकों ने हिन्दू-समाज में छुआछूत की प्रथा को प्रचलित कर दिया था। यह छूआछूत का धर्म घृणा का धर्म है। ऐसा धर्म वैदिक धर्म की पवित्र भावनाओं के प्रतिकूल है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने छूआछूत के धर्म की जी-जान से निन्दा की वेद सार्वभौम मानव-धर्म के स्रोत हैं। उन्होंने वैदिक-धर्म की विश्वव्यापी शोभा तथा आभा को संसार में स्थापित करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया और अन्तिम क्षण तक इस उद्देश्य पूर्ति में लगे रहे। इसी महान् उद्देश्य के लिए आंदोलन करते हुए प्रत्येक हिन्दू को उन के इस पवित्र बलिदान-यज्ञ में अपना-अपना भाग समर्पित करना चाहिये जिससे स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति सदा चिरंजीवी रहे।

———

महान् हुतात्मा का हिन्दू-जाति को संदेश

श्री विनायक दामोदर सावरकर

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दू-जाति पर तथा हिन्दुस्तान की बलि वेदी पर अपने जीवन की आहुति दे दी। उनका संपूर्ण जीवन और विशेषकर उन की शानदार मौत हिन्दू-जाति के लिये एक स्पष्ट संदेश देती है। हिन्दू-राष्ट्र के प्रति हिन्दुओं का क्या कर्तव्य है—इसे मैं स्वामी जी के अपने शब्दों में ही रखना चाहता हूं। सन् १९२६ के २९ अप्रैल के "लिबरेटर" पत्र में वे लिखते हैं—

"स्वराज्य तभी संभव हो सकता है, जब हिन्दू इतने अधिक संगठित और शक्तिशाली हो जाएं कि नौकरशाही तथा मुस्लिम धर्मोन्माद का मुकाबला कर सकें।"

उपर्युक्त उद्धरण से हिन्दू-जाति की तीव्र मांग का पता चल सकता है और विशेषकर ऐसे नाजुक समय में जब कि इस पर चारों ओर से आघात और आक्रमण हो रहे हों। हिन्दुओं का एक प्रबल सङ्गठन ही चारों ओर से सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है और यही सब दुर्घटनाओं की एक-मात्र रामबाण औषध है। यदि हिन्दू-जाति को शान और सम्मान से जीवित रहना है, तो उसे यही पाठ याद करना होगा और उसे अमल में लाना होगा। हे हिन्दुस्तान के हिन्दुओ! यदि तुमने उस महान् हुतात्मा के बहुमूल्य आदेश और सम्मति की अवहेलना की तो तुम्हारा नाश निश्चित ही है। हां, यदि तुम इसे क्रियात्मक रूप दे सको तो तुम उस भयंकर युद्ध में अवश्य विजयी होगे, जो युद्ध चारों ओर से इस जाति पर असंख्य दुर्घटनाओं के साथ हो रहा है। तभी तुम जातीय गौरव को स्थापित कर सकोगे और हिन्दू-राष्ट्र इस मर्त्यलोक में तीव्र ज्योति से चमकता हुआ राष्ट्र बना सकोगे।

———

मनुष्य जाति का महान् पुर्ननिर्माता

विनयकुमार सरकार

स्वामी श्रद्धानन्द जी मनुष्य-जाति के एक महान् पुर्ननिर्माता थे। स्वामी दयानन्द जी के बताये मार्ग पर उत्तर भारत में की हुई स्वामी जी की सेवाओं के लिये पंजाब को गर्व हो सकता है। यह स्वामी जी जैसे कर्मठ पुरुष के प्रयत्नों का ही फल है कि बंगाल के नौजवानों में आर्यसमाज के आदर्शों और कार्य-प्रणाली के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हुआ है। बंगाल की जनता के मन में स्वामी जी वर्तमान भारतवर्ष के एक आदरणीय व्यक्ति के रूप में हमेशा के लिये अंकित रहेंगे।

स्वामी जी का अमर सन्देश

श्रीमती उमा नेहरू

जब मैं स्वामी जी के जीवन का, उनके उत्तम विचारों का, उनके भाव एवं सेवा का ख्याल करती हूं तो ऐसा मालूम देता है कि वह आज भी जीवित है। यद्यपि शरीर नहीं, लेकिन भारत में उनकी आत्मा पूर्णतः नजर आती है।

वह हरिजनों की उमड़ती लहरें, वह मन्दिरों का खुलना, वह गली-गली में भगवान की कथाओं का होना, उन कथाओं में हरिजनों का सम्मिलित होना; मन्दिरों में हंस-हंस कर जाना और हाथ बांध कर भगवान के सामने खड़े होकर यह शिकवा करना कि भगवान् ! क्या पाप हमसे हुए हैं ? क्या हम तुम्हारे जीव नहीं, क्या हम इतने दरिद्र थे, जो तुम हमसे छिपे बैठे थे। आज इतने अरसे बाद तुमने दर्शन दिये।

वे सारे दृश्य जब आखों के सामने से गुजरते हैं, तो एक बार स्वामी जी की शिक्षा व उपदेश स्मरण हो आते हैं।

स्वामी जी का एकमात्र संदेश यही है कि हम हरिजनों को इन्सान समझ कर उनका सुधार करें, जाति-भेद को मिटाने की कोशिश करें, आपस में प्रेम व एकता के भाव पैदा करें और अन्त में सारी शक्ति को मिलाकर देश सेवा में लगा दें। यही उनकी आत्मा चारों कोनों से कह रही है।

महान् भारतीय की विरासत

श्री सत्यमूर्ति

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महान् पुरुष, महान् भारतीय तथा महान् आत्मा थे। मुझे उन को समीप से जानने और उनके साथ कार्य करने का सौभाग्य एवं अवसर प्राप्त हुआ था। वे अपने पीछे हिन्दुत्व तथा हिन्दुस्तान के कार्य के लिए अपने महान् सच्चे त्याग और लगन की विरासत छोड़ गये हैं। हम लोग हिन्दू या भारतीय कहलाने के अयोग्य सिद्ध होंगे यदि हम ने हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र न किया और हिन्दू समाज की बुराइयां निकाल कर उसे पवित्र न बना दिया। मेरा विश्वास है कि उनकी स्मृति चिरकाल तक हमारे लिये स्फूर्ति और आदर्श का काम देगी।

उच्च चरित्र और अनुपम त्याग

श्री सी० वाई० चिन्तामणि

स्वर्गीय स्वामी जी ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति थे, जिन्होंने देश भर में अपने उच्च-चरित्र, गम्भीर पवित्रता, अनुपम त्याग तथा देश और हिन्दू-जाति के प्रति नानाविध बहुमूल्य सेवाओं के कारण अपने सहधर्मियों से प्रतिष्ठा और प्रशंसा प्राप्त की थी। वे जाति के भूषण थे। हम उनके विनीत प्रशंसक इससे अधिक और क्या शुभ कार्य कर सकते हैं कि हम सचाई के साथ उनके उज्ज्वल उदाहरण की प्रतिस्पर्धा करने की चेष्टा करें और उनके योग्य सहधर्मी तथा देशवासी बनने का यत्न करें।

धन्य है वह जीवन!

श्री टी० एल० वासवानी

स्वामी श्रद्धानन्द !
वे लक्ष्य पर पहुंचे !
उन्होंने सब कुछ पाया !
वह अपना काम इतिहास में बहुत गहरा अंकित कर गये !
उन्हें मेरी श्रद्धाञ्जलि !
प्रत्येक जीवन का कोई चिन्ह होता है। उनके जीवन का चिन्ह था 'सेवा' !
उनकी स्मृति नये जीवन को जगा देवे और राष्ट्र के युवकों में नई रूह फूंक देवे !
दीन दलितों की इस सेवा के लिए, जो धर्म और आजादी दोनों का दिल है,

हम से अलग होकर भी वे मरे नहीं !
वे तो अब भी बोल रहे हैं !
और उन सब को जिन्हें मैं सुना सकता हूं, उस शहीद का वह सन्देश सुनाना चाहता हूं जो इस क्षण मुझे आ रहा है !
यह वह सन्देश है जिस में प्राचीन नवीन का अभिनन्दन करता है—"धन्य है वह जीवन जो बलि में प्रज्वलित हो।"

———

मेरे प्रेरणास्रोत

महर्षि अण्णा साहब कर्वे

स्वामी जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत में माध्यमिक और उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में देशभाषा (स्वभाषा) को प्रयुक्त किया। अब तो इस सिद्धान्त का अनेक विश्वविद्यालयों ने अनुसरण कर लिया है। वे स्वामी जी ही थे जिन से प्रेरणा पाकर मैंने अपने भारतीय महिला विद्यापीठ की समस्त परीक्षाओं में स्वभाषा को माध्यम बनाया।

———

राष्ट्र-निर्माता

श्री माधव श्रीहरि अणे

स्वामी श्रद्धानन्द जी भारत के उन महापुरुषों में हैं, जिनका देश के इतिहास में शाश्वत स्थान है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की कहानी अधूरी ही रह जायेगी यदि उसमें, शिक्षा, सामाजिक सुधारा, धार्मिक पुनरुत्थान और वेद धर्म की सेवा के क्षेत्र में की गई स्वामी जी की सेवाओं का उचित

अंकन न किया जाय। आर्य ऋषियों की दो विशेषताओं—आदर्शवादिता और त्याग की भावना—का स्वामी जी में सुन्दर समन्वय हुआ था। स्वाधीन भारत के तरुणों के लिये उनका जीवन प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। वे स्वतन्त्र भारत के निर्माताओं में अन्यतम हैं।

उज्ज्वल चरित्र

श्री गणेश वासुदेव मावलंकर

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की तपस्या, स्वार्थ त्याग, समाज-सेवा ये सब बहुत ही उज्ज्वल हैं। जब-जब उनकी स्मृति जागृत होती है तब-तब उनकी धीरोदात्त, भव्य और गम्भीर मुद्रा मानों आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है। इस शुभ अवसर पर मैं उनके प्रति स्मृति रूप में अपनी श्रद्धांजलि विनीत भाव से अर्पित करता हूं। जिस देश में ऐसे महानुभाव जन्म लेते हैं उन देशों की कभी भी अवनति नहीं हो सकती।

भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति

श्री गोविन्द वल्लभ पन्त

स्वामी जी की पुण्य स्मृति को निरन्तर देश और समाज के सामने जीवित और जागृत रखना उपयोगी और आवश्यक है। स्वामी जी का स्थान हमारे देश की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में है ओर सदैव रहेगा। उनका देश प्रेम, भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास, अदम्य साहस और वीरता, असाधारण त्याग, निर्बल और दलितों के प्रति आन्तरिक प्रेम व सहानुभूति और पुनीत सदाचार भारतीय पुरुषरत्नों के इतिहास में

सदैव अंकित रहेंगे। उनके यशस्वी जीवन के प्रधान गुण-त्याग और सेवा से आज हम भारतवासियों का मस्तक गर्व से ऊंचा है।

जातीय निर्माता

श्री पट्टाभि सीतारामैय्या

निःसन्देह राजनीतिज्ञों और योद्धाओं का किसी जाति के निर्माण करने में बड़ा हाथ होता है। परन्तु उनके नाम सहज में ही भूल जाते हैं, जब कि उन महात्माओं के नाम, जो किसी जाति के नवीन जीवन को बनाते हैं, आगामी नस्लों की स्मृति में सदा बने रहते हैं। उन्हीं में से स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि उनका नाम ऐसे जातीय निर्माताओं के रूप में, जिन्होंने बड़े से बड़े बलिदान किये, सदा स्मरण रहे। उनके बलिदानों में से सब से बड़ा बलिदान यह था कि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की वेदी पर अपने शरीर की भी आहुति दे दी।

उस नर-रत्न से भारत धन्य है

श्री आचार्य क्षितिमोहन सेन

स्वामी जी की सेवाएं, उनका साहस और प्रखर प्रतिभा की बात जब याद आती है, तो हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। यह इस देश का परम सौभाग्य है कि उस दुःख-दुर्दिन की अवस्था में भी उसे स्वामी जी जैसे नर-रत्न को अपने बीच पाने का सौभाग्य हुआ था, जिन्होंने न केवल अपने जीवन से बल्कि मृत्यु से भी देश को साहस और तपस्या के मार्ग में अग्रसर कर दिया। हम आपके अनुष्ठान की सफलता चाहते हैं।

उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट था

श्री जगजीवनराम

स्वामी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी और देश के लिए उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट था। उनके प्रति वास्तविक श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि हम उनके कार्य को जारी रखें और उनको सफल बनाएं।

देदीप्यमान स्मृति

श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई

मेरा दृढ़ निश्चय है कि भारत के आधुनिक संकट-मय समय में मानवता के प्रति नि:स्वार्थ-सेवा ही, जिसके लिये अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने जीवन का समर्पण कर दिया, हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकती है। मुझे आशा है कि स्वामी जी की वह देदीप्यमान स्मृति यावच्चन्द्रदिवाकरौ हमारे अन्दर अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिये नवचेतना का संचार करती रहेगी।

धर्मयुद्ध को शिक्षा

श्री भगवानदास

स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रधान सेना-नायकों और नये भारत के निर्माताओं में स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्थान ऊंचा है। उनकी स्मृति को सदा उज्ज्वल बनाये रखना चाहिये और उससे स्वार्थत्याग, परहित एवं देशहित चिन्तन और निर्भय धर्मयुद्ध की शिक्षा लेनी चाहिये।

सेवा और त्याग की मूर्ति

श्री अमरनाथ झा

स्वामी श्रद्धानन्द जी इस देश के सर्वमान्य नेता थे। उनकी स्मृतियों को हम कभी भूल नहीं सकते। उनकी सेवा, उनका त्याग, उनकी कार्य-क्षमता हमारे लिये आदर्श स्वरूप है। हमारा कर्तव्य है कि उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष उनका गुणगान करें और अपने को इस योग्य बनायें कि उनका महान् कार्य सुचारु रूप से संपन्न कर सकें।

जनता का निर्भीक सेवक

श्री बालगंगाधर खेर

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्होंने अपना सारा समय हिन्दू जाति के उपकार और संगठन में लगा दिया और अन्त में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। उनकी बरसा मनाते समय उनके अनुयायियों के लिये मेरा यही सन्देश है कि सब निर्भीक जनता के सेवक बनने का यत्न करें।

उनके अनुकरणीय गुण

श्री सुन्दरलाल

स्वामी श्रद्धानन्द जी जिस काम को ठीक समझते थे उसे पूरा करने में जिस जबरदस्त लगन, साहस और त्याग के साथ जुट जाते थे, वह बात आज देश के लोगों में बहुत ही कम दिखाई देती है। वे जिसे न्याय समझते थे उस

के लिये "निन्दन्तु नीतिनिपुणाः" वाले श्लोक को अपने जीवन में पूरी तरह उतार देते थे। वे महान् थे। उनके थोड़े से भी गुण अगर हम में आ जावें तो देश आज के दुःखों को बहुत जल्दी पार कर जावे।

जीवन को आदर्श बनाने का व्रत

श्री मदनमोहन सेठ, प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश

प्रत्येक आर्य-पुरुष हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी को स्मरण करेगा। गुरुकुल कांगड़ी उनकी अमर स्मृति है। यदि कुलवासी अपने गुरुकुल स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की उस सन्देश परम्परा को प्रचलित रख सकें जिसे उन्होंने ऋषि दयानन्द से ग्रहण किया था और उनके व्रत को धारण कर सकें, जो अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाने तथा प्रचलित असत्य प्रवाह के विरुद्ध बुद्धि स्वातन्त्र्य से निर्भीकता पूर्वक सत्य को ग्रहण करने तथा इसके लिये मृत्यु तक को सहर्ष आलिंगन करने का था, तो हम सभी का कल्याण होगा।

निर्भय और निःस्वार्थ त्याग

श्री जी० वी० केतकर

स्वामी जी के अन्दर वे महान् गुण थे जो कि प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप एक सच्चे संन्यासी में होने चाहियें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी स्वामी जी की निर्भय और निःस्वार्थ त्याग की भावना भारत की सच्ची राष्ट्रीयता के लिए एक महान्तम आदर्श है।

वे समस्त संसार को आर्य देखना चाहते थे

श्री जुगलकिशोर बिड़ला

स्वामी श्रद्धानन्द जी का शुद्धि सन्देश अर्थात् 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के आदर्श का भारत तथा यूरोप, अमेरिका आदि अन्य देशों के लोगों में, जो आर्य-वंश के (आर्य रक्त के) होते हुए भी आर्य धर्मों के नहीं हैं, उनमें आर्य-धर्म का प्रधार करना गुरुकुल के प्रत्येक स्नातक का विशेष ध्येय होना चाहिये।

सर्वविध स्वतन्त्रता के उपासक

श्री घनश्यामसिंह गुप्त

धन्यकीर्ति स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज उन थोड़ी सी विभूतियों में से थे जिन्होंने देश और धर्म दोनों की सेवा की। भारत की स्वतन्त्रता की उनके हृदय में लगन थी और उनकी कल्पना केवल भौगोलिक किंवा धार्मिक आजादी तक ही सीमित नहीं थी, अपितु ऋषि दयानन्द की भांति वे भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता भी चाहते थे। भारत की सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक परतन्त्रता की शृंखला को तोड़ने के लिये उन्होंने उस कठिन समय में भी गुरुकुल की स्थापना की थी। इससे उन्होंने उन क्षेत्रों में (सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक) विदेशी आधिपत्य को चुनौती दी थी। हमारे दुर्भाग्य से यह चुनौती अभी तक, भारत की भौगोलिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता हो जाने पर भी, सफल नहीं हुई है। और मुझे तो पहले से भी अधिक खतरा दिखाई देता है। पहले तो हम विदेशी भाषा, विदेशी वेषभूषा और विदेशी संस्कृति पर मुग्ध नहीं थे और उन सब को शीघ्र से शीघ्र हटाना चाहते थे। परन्तु आज उच्च कोटि के भी ऐसे ऐसे व्यक्तियों को

कमी नहीं जो उनकी रक्षा करना चाहते हैं और भारत की भारतीयता को गौण मानते हैं।

साहस और त्याग का जीता जागता उदाहरण

श्री गोकुलचन्द्र नारंग

स्वामी जी ने इस आदर्श संस्था गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापन में जो अनथक परिश्रम और आदर्श त्याग किया, वह भुलाया नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी स्वामी जी ने साहस और त्याग का जीता-जागता उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत किया। स्वामी जी के ये प्रशंसात्मक कार्य उनके अनुगामियों और प्रशंसकों का पथ प्रदर्शन करते रहेंगे और एक नई स्फूर्ति का संचार करते रहेंगे।

आर्य धन : श्रद्धानन्द विशेषांक

२६ दिसम्बर, १९७९